R. S. 10151

मनुष्य बनो

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदंपूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वर्ष ८ | आसौज सं० २०१६ अक्टूबर १९५९ | सं० १/८५

* प्रार्थना *

मन में समझ गुरू की महिमा, गुरु का ध्यान लगाओ ।
अन्तर बाहर सतगुरु व्यापे, निरख निरख गुरु गाओ ॥
बन परबत में नगर ग्राम में, गुरु की परगट लीला ।
मंगल में मंगल है चहुँ दिस, समझे कोई सुशीला ॥
छिन छिन पल पल नाम दिवाना, नाम से सूरत लागी ।
नाम सनेही जो नर प्रानी, सो सहजहिं वैरागी ॥
शब्द सुरत का साधन करना, दिन प्रति दिन गुरु गाना ।
सुमिरन भजन ध्यान निसिवासर, जो कोई करे सयाना ॥
गुरू की मूरत बसी हिये में, अंग संग गुरु देवा ।
अन्तर में रहे भजन ध्यान, नित अन्तर मानस सेवा ॥
तूने गुरु को बाहर जाना, किसने तुझे बताया ।
मूरख सोच समझ मन अपने, सब कुछ गुरू की माया ॥
चेत सवेरे अवसर पाया, सुरत शब्द नहिं भूले ।
सेवक अब तो भया बड़भागी, शब्द हिंडोले झूले ॥
राधास्वामी राधास्वामी, राधास्वामी गाना ।
मन की दुर्मत दूर निकारो, तब प्रगटे गुरु ज्ञाना ॥

दातादयाल जी के सतसंग के बचन
देहरादून १०–५–३७

नहीं मैं जानता हूँ, कौन हूँ, क्यों कर यहाँ आया।
पड़ा क्यों काल की फाँसी में, क्यों माया ने भरमाया॥

इस शब्द में यह प्रश्न किया गया है, कि मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया ? और माया ने किस प्रकार मुझको भरमाया।। काल का झमेला क्यों सिर पर पड़ा ? इधर गया, उधर गया, भरमता फिरता रहा, नाना प्रकार के जप तप और संयम किये। जिनको ज्ञानी और ध्यानी समझता था उनसे मिला जुला, किन्तु खेद यह है कि उनमें से एक ने भी तो मेरे इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। भ्रम में ही पड़ा रहा और यह भ्रम और अज्ञान मेरे दुख और क्लेश का कारण बन गया। जब प्रत्येक स्थान से हताश हो गया उस समय किसी ने मुझे राधास्वामी सतसंग की सूचना दी। मैं राधास्वामी सतसंग में गया। सतसङ्ग का मन्तव्य यह है कि मन के भीतर एक भी सन्देह शंका न रहने पावे। वहाँ किसी की जिभ्या बंद नहीं की जाती। प्रत्येक सतसंगी को अधिकार है कि जो शंकायें उनके मन में उत्पन्न हों उन पर खुले हृदय से शंका समाधान करे।

जिस समय मैंने अपने प्रश्न प्रस्तुत किये गुरू महाराज ने वर्णन किया कि "तू सत है, सत लोक से आया है। सत कहते हैं होने को। यह अस्तित्व है, जीवन है। यदि तू अस्तित्व है। सत और जीवन वाला है तो किस प्रकार सम्भव है कि एक वस्तु जीवन रखती हुई अपने अस्तित्व का प्रकाटय करने से बंचित रहे तो फिर उसको अस्तित्व कौन कहेगा। तू था तो आगया। अब तेरा प्रश्न यह है कि मैं आने को तो आगया परन्तु माया ने मुझको क्यों भरमाया। इसकी क्या आवश्यकता थी ? और काल के झमेले में क्यों फँसा ?"

गुरू ने वर्णन किया:—"संसार नहीं जानता कि काल क्या है और माया क्या है ? उन्होंने असभ्य बनकर काल को गालियाँ देना और कोसना सीख रक्खा है। जितने विद्वान पुरुष हैं, संस्कृत के ज्ञाता, ज्ञानी, ध्यानी हैं, यह शब्दों के गुप्त रहस्य को तो जानते नहीं। आप स्वयं त्रुटि में पड़ गए और अपनी विद्वता के अभिमान में दूसरों को भी उसी त्रुटि के जाल में फँसाना आरम्भ किया। परिणाम यह हुआ जो तू देख रहा है। शिष्य ने पूछा कि 'यह माया क्या वस्तु है ?" गुरू ने उत्तर दिया "माया संस्कृत शब्द है यह दो शब्दों से बनी है "मा" कहते हैं मापने को और "या" कहते हैं यन्त्र को। जिस यन्त्र से प्रत्येक वस्तु की माप की जाती है उसका नाम माया है। त्रुटि में पड़कर कोई व्यक्ति स्त्री को माया कहता है, कोई धन, सम्पत्ति को माया कहता है। इस कारण प्राणी बहक जाते हैं परन्तु इनमें से एक भी माया नहीं है। माया केवल मापने के यन्त्र का नाम है। जिस यन्त्र से सब की माप की जाती है वह माया है और वह कोई अन्य वस्तु नहीं है, वह केवल तुम्हारी बुद्धि है। इसी माया से तुम ईश्वर, जीव, जीव, जीव, जीव प्रकृति, ईश्वर प्रकृति तक की माप करते हो और समस्त सांसारिक पदार्थों की माप इसी बुद्धि से होती है। इसका नाम माया है। तुम अपनी बुद्धि के चक्कर में पड़कर भूल गये और भ्रम में पड़ गये। यह नहीं समझा कि माया तुम्हारा गुण है। और तुम केवल परम तत्व हो। परम तत्व की ओर से मन हटा गुण के चक्कर में आगया और भूल भ्रम में पड़ गये। अपने गुण के जाल में तुम आप फँस गये। तुमने जैसा किया वैसा तुम्हारे सम्मुख आया। इसमें न माया का कोई दोष है न सृष्टी, कर्म का। शिष्य फिर प्रश्न करता है। "थोड़े शब्दों में यह समझा दीजिये कि मेरी बुद्धि ने क्या तोल माप की जिसके

कारण मैं इस बन्धन की दशा में आगया"। गुरू उत्तर देते हैं "हे शिष्य ! आ ! मैं भी अधिक बात नहीं कहना चाहता हूँ। तेरी बुद्धि ने तुझको समझाया है कि यह मेरा है और यह तेरा है, यह मैं हूँ, यह तू है। मैं-मैं, तू-तू, और मेरे और तेरे पने के झगड़े में पड़कर तू अपनी वास्तविकता को खो बैठा।

शिष्य का प्रश्नः—"इससे बचने का क्या उपाय है" ?

उत्तरः—तो "सुन ! मोर तोर की जेबरी, बट बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे, जाके नाम अधार॥

शिष्य का प्रश्न—"काल क्या वस्तु है ?"

उत्तर—काल संस्कृत भाषा का शब्द है उसका अर्थ है गिनती अङ्क गणित। जहाँ गिनती गिनाई जावे, जहाँ गिनती गिनी जावे, जहाँ संख्या का वर्णन किया जाय उसका नाम काल है। काल कहते हैं समय को, युग को और युग की आवश्यकताओं को। तू समय के झमेलों में पड़कर सँभल नहीं सका। संख्या, अङ्क-गणित और गिनती के चक्कर में पड़ गया। मेरी सम्पत्ति इतने सैकड़ा, इतने सहस्र और इतने लाख, है। मेरी सन्तान इतनी है। संसार में इतने पंथ और सम्प्रदाय हैं। यह मेरा पंथ है। यह उसका पंथ है। यह तेरा पंथ है। इस गिनती ने तुझको भरमा दिया और तू काल के चक्र में आगया।"

शिष्य ने पूछा—"भगवन आप जिस प्रकार समझाते हैं किसी ने काल के सम्बन्ध में इस प्रकार का ज्ञान नहीं दिया है"।

उत्तर—नहीं दिया है तो मैं क्या करूँ। मेरा क्या अपराध है, इन भोले भाले जीवों को शब्दों के अर्थ तक का पता नहीं, आप भ्रमग्रस्थ हुये और दूसरों को भी भ्रम में डालते हैं। तुम मेरी बात पर न जाओ, संस्कृत के कोष को देखलो कि काल और माया के कोषीय अर्थ क्या हैं ?

राधास्वामी मत की शिक्षा में योगिक शब्द का कम

विचार किया जाता है परन्तु रूढ़ी विचार से सदैव कार्य किया जाता है। यदि तुम संस्कृत के हिन्दी कोष को देखोगे तो तुमको स्वयं पता लग जायगा कि माया मापने का यन्त्र है और यह बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। और काल संस्कृत शब्द कल से निकला है जिसके अर्थ गिनती के हैं। गिनती में पड़ गये गर्मी में क्या खाय? वरषा ऋतु में क्या पहिने और जाड़े में क्या ओढ़ें बिछावें किस प्रकार कार्य व्यवहार करें और किस प्रकार सेवा कार्य करें। यह समस्त बातें काल समझाता रहता है। काल के अर्थ केवल समय के हैं और कुछ नहीं। और संस्कृत शब्द कल गिनती गिनाने से निकला है। इस कलयुग में काल अधिक व्यापता है क्योंकि इस युग में आकर प्राणी की बुद्धि बड़ी प्रचंड हो जाती है। मेरा तेरा पना बहुत सूझने लगता है और गिनती गिनने की टेव पड़ जाती है।

इस माया और काल के धोखे में आकर प्राणी चिन्तामय और भयभीत हो जाते हैं। जिसके राज्य में बारम्बार घटनायें घटती रहती हैं। चाहे वह इतिहासिक घटनाओं का बारम्बार प्रकाटय हो अथवा समय के परिवर्तन शील होने का, उसी का नाम काल है। इस काल में प्रत्येक वस्तु परिवर्तन होती रहती है। यदि तुम इस काल की आकृति को देखना चाहते हो तो वर्तमान समय की घड़ी को देखो। वह क्षण क्षण टिक टिक करती हुई गिनती गिनाती है कि साठ सैकिन्ड का एक मिनट होता है, साठ मिनट का एक घन्टा बनता है, चौबीस घन्टे का एक दिन होता है और ३६० दिन का एक वर्ष होता है।

यह समस्त बातें काल के अन्तरगत हुआ करती हैं। तुम बुरी प्रकार से इसी अपनी माया और काल में फँसे और व्यर्थ दुखित और चिंतिति हुये मारे मारे फिर रहे हो और यह तुम्हारी गुत्थी सुलझने में नहीं आती है और जब तक तुमको कोई पूर्ण

और रहस्य ज्ञाता गुरू नहीं मिलेगा यह जन्म जन्मांतर तक सुलझने वाली नहीं है।

राधास्वामी मत में काल और माया की केवल यह व्याख्या और शिक्षा है।

शिष्य प्रश्न करता है "मैं क्यों इस 'खोज बोध में पड़ा रहता हूं और क्यों काल और काल का चक्र मेरे पीछे लगा रहता है।

गुरू हँसा ! तू इस बात को समझ गया कि यह दोनों ही तेरे गुण में मिश्रित हैं। गुणों को समझकर अपने निज रूप की ओर चला जा, इनका झमेला छूट जायगा। वरन् इस कलयुग में स्वार्थ का महा पाप सदैव तेरे सिर पर उपस्थित रहेगा। क्या तू अपनी आँखों से नहीं देखता कि प्रत्येक प्राणी स्वार्थ वश है। जाति जाति के अधिकारों को छीन रही है। धनाड्य निर्धनों की जीविकाओं को उनके मुख से निकाल रहे हैं, एक देश दूसरे देश पर अधिकार प्राप्त करना चाहता है। यह क्यों है ? केवल इसी स्वार्थ वश यह स्वार्थ कलियुग का प्रथम चरण है। प्राणी पूर्ण रूपेण स्वार्थी बनकर मेरा तेरा पना करता हुआ नाना प्रकार के पाप कष्ट और दुख का भागी बनता है। जैसा करता है उसी का परिणाम उसको भोगना पड़ता है। इसमें किसी का क्या अपराध है। "कर्म प्रधान विश्व कर राखा ! जो जस कीन सो तस फल चाखा" जिस समय तू स्वार्थ के विचार में आकर अनुचित और असभ्य कार्य करने लगेगा फिर उनके परिणाम का भागी तू होगा अथवा मैं हूँगा। जो जैसा करेगा भरेगा। जो जैसा बोलेगा वैसा सुनेगा। जैसा बोयेगा वैसा काटेगा। जो व्यक्ति जैसा विचार करेगा वह उसी का रूप बनता हुआ चला जावेगा। यहाँ तक कि पाप ग्रस्त होकर उसका जीवन पाप मय हो जावेगा।

शिष्य का प्रश्नः—महाराज ! आपने बड़ी दया की कि वास्तविकता को समझा दिया वरन् आज तक किसी ने मुझको काल और माया की वास्तविक व्याख्या नहीं समझाई थी। अब ऐसी दया कीजिये कि मैं उनके झमेलों से मुक्ति पा जाऊँ।

गुरु ने उत्तर दिया—इसका उत्तर तो मैंने तुझको पहले ही देदिया था।

मोर तोर की जेवरी बट बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधे जाके नाम अधार॥

मालिक का नाम ले। मालिक में जिसको कहता हूं वह तेरी ज्ञात है तेरा रूप है तुझमें केवल अंशा अंशी भाव आया है। जिस समय तुझे यह नाम बताया जावेगा और इस नाम के आराधन में लगेगा काल तेरे सीधी ओर पड़ा रहेगा और माया तेरे बांई ओर पड़ी रहेगी और तू अकेला खड़ा रहेगा फिर इनका झमेला तुझको नहीं सतायेगा।

शिष्य यह नाम क्या है ?

उत्तरः—यह नाम और कुछ नहीं है केवल शब्द है। इस शब्द के साधन से तू काल और माया के भवसागर से पार होजायगा।

शिष्यः—अब तक मेरी समझ में यह बात नहीं आई कि शब्द किस प्रकार मुझे इस भव जाल से छुटकारा दिलायेगा और शब्द साधक क्या वस्तु है ?

गुरूने हँसकर उत्तर दियाकि हे शिष्य ! मैं तुझको बिधि बताता हूँ ध्यान पूर्वक सुन ! अपने मन के भीतर मेरे विचार मेरे रूप और ध्यान को स्थान दे जिससे कि मेरी वाणी तेरे अन्तर उतर जावे। उस समय तू वास्तविकता के समझने के योग्य होगा। और जिस प्रकार सरकंडे को उसके पत्तों से प्रथक कर दिया जाता है उसी प्रकार यह गुण का झमेला तुझ से दूर हो जावेगा,

तू अपने रूप को और उसके रूप को समझलेगा पहिचान लेगा।

शिष्यः—किस प्रकार से ?

गुरुः—तीन बन्द लगाय कर, सुन अनहद टंकोर।
नानक सुन्न समाधि में, नहीं सांझ नहीं भोर॥

अर्थ स्पष्ट है तीन बन्दों का लगाना सीख और इस प्रकार नियत्रित दशा में आकर अनहद टंकोर को सुन। जो शब्द के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जिस समय इसका साधन अभ्यास करता हुआ तू शून्य अवस्था में चला जायेगा, वहाँ न साँझ है न भोर है, न रात्रि है न दिवस है। समाधी की दशा आ जायेगी फिर तू देखेगा कि काल तुझसे किस प्रकार अलग हो जावेगा और माया किस प्रकार अलग थलग खड़ी रहेगी। सहज सहज सी बात है जिसको वृद्ध और नवयुवक, स्त्री और पुरुष स्वस्थ और रोगी प्रत्येक व्यक्ति यदि इच्छा रखता है तो कर सकता है।

शिष्यः—कोई ऐसा उदाहरण दीजिये कि सुगमता से यह बात समझ में आजाय। विषय बहुत कठिन और दुर्लभ प्रतीत होता है।

गुरूः—यदि तू कठिन समझता है तो कठिन है और सुगम समझता है तो सुगम है। कठिन और सुगम दोनों तेरी बुद्धि और विचार की प्रतिविम्बक आकृति हैं जो तेरे चारों ओर चक्कर लगाती रहती हैं। जिस समय तू शब्द के विचार में मग्न हो जावेगा यह दोनों गुण तुझ से प्रथक हो जावेंगे।

शिष्यः—किस प्रकार से ?

उत्तरः—तू ने अब तक नहीं समझा। मैं तुझे साधारण रीति से समझता हूँ। एक कार्यालय का कर्मचारी जिस समय अपनी मेज़ पर लेखनी और दवात लेकर बैठता है और कार्य करने लग जाता है तो उस कार्य के करते हुए इस प्रकार उसमें व्यस्त हो जाता है कि उसको सुध नहीं रहती कि उसके चारों

और क्या हो रहा है। घंटा टन टन बज रहा है परन्तु उसको सुध नहीं। साधारण कर्मचारी जो घड़ी की सुइयों को देखते रहते हैं कि कब चार बजे, घंटा टन टन धुनि करे और वह अपने निवास स्थान को प्रस्थान करें। यह कर्मचारी मनुष्य नहीं हैं यह माया और काल के दास हैं, उनकी छुट्टी में दासता का प्रभाव पड़ा हुआ है। यह इस रहस्य से अनिभिज्ञ है। बन्दी घर के बन्दियों का कार्य दासों का कार्य होता है। तनिक मेठ की दृष्टि उधर से हटी नहीं कि वह फावड़े पर हाथ रखकर खड़े हो जाते हैं। यदि तू व्यवहार का कार्य भी मालिक बन कर करे तो यह रहस्य तेरी समझ में अभी आजाये।

हे शिष्य ! मैं तुझको सहज सहज और सुगम सुगम बात समझता हूँ तू मनुष्य बन, "प्रत्येक बात में मनुष्य बन" कार्य के समय झमेले के सम्बन्ध तेरे सिर मस्तिष्क पर प्रभाव न डालें। स्वामी बन कर कार्य करना सीख।

मैंने तुझको बता दिया कि तीन बन्द लगाया कर। कान से कुछ न सुन, आँख से कुछ न देख, जिभ्या से कुछ न कह। प्रत्येक इन्द्री और अपने शरीर को संलग्न करके अपने मन को कार्य में व्यस्त करदे और तेरा यह सांसारिक कार्य भी तुझको वास्तविकता की ओर ले जावेगा। जब तुझे विश्राम की सूझती है तो जाग्रत और स्वप्न दोनों को छोड़कर तू सुषप्ती में चला जाता है। वहाँ न काल है न माया है, न यह जगत और न सांसारिक पदार्थ हैं। क्या तुझको इन साधारण साधारण बातों की भी समझ नहीं है ?

शिष्य:—महाराज बातें मेरी समझ में आगईं। अब मैं अधिक प्रश्न नहीं करना चाहता। केवल एक बात शेष रह गई है, उस गुत्थी को भी सुलझा दीजिए। वह यह है कि शब्द साधन से मेरी दशा किस प्रकार की हो जावेगी। और किस प्रकार मेरा

व्यवहार और परमार्थ दोनों समता और सम दृष्टि की दशा में आ सकेंगे ?

गुरू ने उत्तर दिया—तेरी दशा इस प्रकार की हो जावेगी।

जैसे जल में कमल निरालम, मुर्ग़ाबी निशानीये।
सुरत शब्द भवसागर तरिये, नानक नाम बखानिये ॥

कमल में जल रहता है किन्तु जल और पृथ्वी से इसको कोई सम्बन्ध नहीं, वह सूर्य मय होकर सूर्य हो जाता है। जल पक्षी सहस्रों बार जल में ग़ोता मारता है परन्तु बाल और पर भीगते नहीं। इस शब्द के साधन करने वालों की भी यही दशा हो जाती है।

शब्द गुरू महाराज

चरन गुरु हिरदे धार रही ॥ टेक ॥
भौ की धार कठिन अति भारी। सो अब उलट बही ॥१॥
गुरु बिन कौन सम्हारे मन को। सुरत उमँग अब शब्द गही ॥२॥
कोटिन जन्म भरमते बीते। काहू मेरी आन न बाँह गही ॥३॥
अब के सतगुरु मिले दया कर। शब्द भेद उन सार दई ॥४॥
नौ को छोड़ द्वार दस लागी। अक्षर मथ नौनीत लई ॥५॥
नौका पर चली अब गुरु बल। अगम पदारथ लीन सही ॥६॥
क्या क्या कहूँ गति नाहीं। सुरत शब्द मिल एक हुई ॥७॥
रहनि गहनि की बात नियारी। सन्त बिना कोई नाहिं कही ॥८॥
सुन्न शिखर चढ़ महासुन्न लख। भँवर गुफ़ा पर ठाट ठई ॥९॥
सत्तनाम सत धाम निरख धुर। अलख अगम गति पाय गई ॥१०॥
सुरत निरत सँग चली अगाड़ी। राधास्वामी राधा० चरन मई ॥११
अब आरत सिंगार सुधारी। प्रेम उमँग भी बहुत चही ॥१२॥
काल कला सब दूरि बिडारी। दयाल सरन अब आनलई ॥१३॥
पच रँग बाना पहन बिराजे। शोभा धारी आज नई १४॥
जीव काज निज भवन छोड़ कर। जमा दूध फिर होत दही ॥१५॥

मथ मथ माखन काढ़ निकारा। बिरले गुरुमुख चाख चखी ॥१६॥
राधास्वामी दीन अवाज़ा। चढ़ो अधर निज धाम यही ॥१७॥

नोट—(१) नम्रता से कर्म, भक्ति, और ज्ञान सब सफल होते हैं।

(२) यदि देश की उन्नति चाहते हो तो 'मनुष्य बनो' का घर घर प्रचार करो। इसी में हमारा देश का कल्याण है।

(३) सतसंग से लाभ उठाओ। जीवन साधन सम्पन्न बनाओ। फिर देखो कि कैसी बहार है। करनी करो और जन्म बनाओ। रहनी रहो गुरु गुन गाओ॥

कर्म भोग अथवा मौज

(लेखक परमदयाल फ़क़ीर साहब)

ज़िन्दगी की इन्तहाई, हालत में मेरा क़याम है।
क्या कहूँ संसार वालो, किस जगह मुक़ाम है॥
कोई जा हो तो मैं कहूँ, कोई निशान हो तो दूँ।
लामकानी मुहीतकुल हो रहा, यह मेरा अब नाम है॥

मालिक की खोज के क्रम में चलते चलते अब एक ऐसी अवस्था आच्छादित होती रहती है जहाँ मेरे अस्तित्व अथवा मेरी चैतन्य अवस्था को जो जीवन है सर्व व्यापकता का अनुभव कराती है वह भी जब मैं फिर आत्मिक, मानसिक तथा शारीरिक संसार में आता हूँ। आज समस्त रात्रि इसी अवस्था में रहने के पश्चात् जब चैतन्यता हुई तो विचार किया कि मैं कहाँ था और अब क्या हो गया। संयोग वश दातादयाल का शब्द स्मरण हुआ।

फ़क़ीरा रूप तेरा अति प्यारा। टेक
तू सत चित आनन्द की मूरति तू तीनों से न्यारा।
तेरी गति मति बुद्धि न जाने, अटक रही मँझधारा॥

कर्म किया सत की चढ़ा घाटी, चित में विवेक विचारा।
सत चित आनन्द विलासा, चहुँ दिश हर्ष पसारा॥
तीन त्याग चौथे को धारे, सो सबका अधारा।
द्वन्द जगत त्रिकुटी की त्रिकुटी, छोड़ चला घर बारा॥
नहीं तू दोय न तीन चार है, नहीं तू सहस्र हजारा।
एक एक है एक एक है, जाने जानन हारा॥
एक अनेक कहाँ हैं तुझमें, यह भी भूल विकारा।
राधास्वामी दया रूप लख अपना, तू व्यापक संसारा॥फ़क़ीरा

ठीक पुष्टी होगई परन्तु अब प्रश्न यह है कि क्या मैं अथवा कोई अन्य इस अवस्था में जो अपने चैतन्य रूपी जीवन को सर्व व्यापक बना लेता है, क्या वह सत्यतः उस मालिक परमतत्व का रूप हो जाता है।

यदि हो जाता है तो जिस समय वह अपनी सर्व व्यापक अवस्था से शरीर में अवतरित होता है तो जो कुछ भी संकल्प वह करता है यदि वह पूर्ण हो जाय तो निश्चय ही वह परमतत्व है। यह मेरे मनमें विचार उत्पन्न हुआ करता है। यह सत्य है कि अधिकतर मेरे संकल्प पूर्ण होगये वरन् कुछ अभी तक पूर्ण नहीं हुये।

पत्नी अत्यन्त अस्वस्थ थी उसके दुख की दशा देखी नहीं जाती थी। मैंने अपने इस जन्म के सम्पूर्ण पुण्य कर्म यदि कोई हैं तो उसका फल उसको संकल्प कर दिया। आज वह स्वस्थ है। निर्बलता अवश्य है किन्तु उसको अब कोई दुःख नहीं है। परन्तु कतिपय संकल्प अभी तक पूर्ण नहीं हुये।

जीवन के अनुभवों ने सिद्ध किया है यद्यपि पूर्णतः निश्चय नहीं हुआ। मानवीय जीवन अभ्यास और साधन द्वारा चैतन्य रूप में परिवर्तन हो जाता है। चेतन रूप ठीक है कि साधन और अभ्यास द्वारा सर्व व्यापकता की अवस्था में परिणित हो जाता

है परन्तु क्या वह उस परमतत्व, आधार के समस्त गुण और शक्तियों को प्राप्त कर सक्ता है ? इसका अनुभव करना है।

जो जो घटनायें अथवा मेरे संकल्प पूर्ण हुये वह मैं समझता हूँ कि ऐसा होना ही होगा।

यह संसार प्राकृतिक शक्तियों के अन्तरगत है और प्रत्येक शरीरधारी पर आकाश मंडल के प्रभाव पड़ने अनिवार्य हैं। ज्योतिष विद्या अधिक सीमा तक इसका निश्चय कराती है।

ज्योतिष के ज्ञाताओं ने यह निश्चय किया है कि २०१८ में संसार में अधिक परिवर्तन होगा। इसलिये इस बात की परीक्षा करने के लिये कि यदि एक चेतन्य जीवन साधन और अभ्यास द्वार सर्व व्यापक तथा परमतत्व हो सक्ता है तो उसके संकल्प में यह शक्ति होनी चाहिये अतः मैं संकल्प करता हूँ और इच्छा रखता हूँ कि भारत वर्ष इस आगामी संकट से बच जाय। इसके लिये मैं अपना शेष जीवन दशहरे के सतसंग के पश्चात् ऐकान्त में व्यतीत करना चाहता हूँ और अपने सांसारिक व्यवहारिक तथा सतसंग के कार्य से निवृत होना चाहता हूँ जिससे कि मैं इस संकल्प को दृढ़ करूँ और अधिक साधन करूँ और इस स्थूल शरीर को त्याग जाऊँ।

यदि भारत वर्ष सुरक्षित रहा, भय और अशान्ति में ग्रस्त न हुआ तथा मानवता का राज्य आ गया तो संसार यह समझले कि यह सत्य है कि मनुष्य का चेतन्य का जीवन वह परम तत्व हो सक्ता है वरन् प्राणी उस चेतन्य का बुन्द मात्र है। उस अपरम्पार चेतन्य सदनम् की गति का किसी ने पार नहीं पाया। मानव जीवन एक बुन्द है जो उसके क्षोम से प्रगट होकर अन्ततः उसमें लय हो जाता है और प्रत्येक बुन्द जिस प्रकार की उसकी प्रकृति होती है उसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करता है।

इस संतमत अथवा वेदान्त तथा अन्य धर्मों की शिक्षा

ने जन साधारण को एक ऐसा विचार दिया कि मानव महात्माओं साधू, संत का अनुयाई हो और अनेक दशाओं में स्वार्थी महात्माओं साधुओं ने जीवों के इस अज्ञान का अनुचित लाभ उठाया है। अधिक इस पर टिप्पणी नहीं करना चाहता, नेत्र खोलो और देखो।

संसार वालो मैं सत्यता अथवा वास्तविकता का खोजी था, नाककटों में सम्मिलित नहीं हुआ। दातादयाल की पवित्र पुनीति विभूति ने जीवन में सत्यता का संस्कार दिया था जो कुछ आज तक समझा, अनुभव किया उसका वर्णन कर्म भोग वश कर चला। यदि कोई अन्य बात अनुभव में आई तो उसको भी बताजाऊँगा।

इस समय तक जो अनुभव हुआ वह केवल यह है कि प्राणी किसी सत्य पुरुष के सतसंग से रहस्य को समझले और अपना जीवन सौख्य और शान्ति से व्यतीत करे और अपना कर्म करे और प्रसन्न रहे यहाँ तक तो मैं सन्तमत की शिक्षा से सहमत हूं।

क्या कोई किसी को कुछ दे सक्ता है अथवा बना सक्ता है इसकी परीक्षा शेष है। समय बतायेगा। व्यक्तिगत तो प्राणी प्राणी के काम आ सक्ता है किन्तु उसका यह कार्य भी मेरे विचार में मौज के आधीन है। यदि मानवता का राज्य आ जाय और संसार सुखमय और आनन्दमय हो जाय तो मैं फिर अपना विचार सम्भव है कि परिवर्तन करदूँ।

शब्द कबीर साहब

क्या सोवत ग़फ़लत के मारे, जाग जाग मन जागरे ॥ टेक ॥
तन सराय, एक जीव मुसाफ़िर, तापर करत गुमान रे।
रयन बसेरा करले बन्दे, चला सवेरा त्याग रे।
यह तन है कागद का पुतला, ताते अचल सोहाग रे।
तन का चोला बदल जायगा, पड़े दाग़ पर दाग रे।

बिना प्रेम ते रीझत नाहीं, बिना ज्ञान वैराग रे ।
भजन करे तो हंस कहावै, कामी क्रोधी काग रे ।
कहत कबीर सुनों भाई साधो ! प्रगटे पूरण भाग रे ॥

कर्म भोग तथा मौज देश की उन्नति

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

मैं दातादयाल के संस्कार के अन्तरगत जगत कल्याण के लिये कार्य करता रहता हूँ। मानव जाति का कल्याण तो वास्तव में मानव जाति के अपने ही भावों, बिचारों और आशाओं को श्रेष्ठतर बनाने से ही हो सकता है। किन्तु इन विचारों, भावों और आशाओं को ठीक करने के लिए किसी नियंत्रण की आवश्यकता है। जब तक कोई शक्ति मानव के मन पर शासन करने वाली तथा अपने वश में करने वाली न हो यह असंभव है कि प्राणी का मन श्रेष्ठ तथा शुभ संकल्प रख सके। यह शक्ति धर्म है। धर्म कहते हैं जो धारण किया जाय अर्थात् किसी विशेष और निश्चित सिद्धांत पर चलने का नाम धर्म है। अब प्रश्न यह है कि उस धर्म को जिससे कि वर्तमान परिस्थितियों में मानव जाति सुखी रहे कौन बताये और वह क्या धर्म है अथवा क्या नियम होने चाहिये जिससे कि मानव जाति सुखी रह सके।

प्रत्येक युग की परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न होती हैं और युग के अनुसार धर्म अर्थात् नियम में भी परिवर्तन होना अनिवार्य है। इन नियमों को बनाने वाले ऐसे पुरुष होने चाहिए जो महान अनुभवी, प्राकृतिक नियम के ज्ञाता जिनकी बुद्धि और विवेक निर्मल हो, निर्पक्ष, निर्लेप, स्वतंत्र तत्वज्ञान के ज्ञाता हों।

हिन्दू जाति के इतिहास में त्यागी महान पुरुष अधिकतर हुए हैं। किन्तु ऐसा त्यागी जो संसार का समस्त कार्य करते

हुए त्यागी हो, विशेष विशेष ही हुए हैं। भीषम पितामहजी उन महान पुरुषों में से एक हुए हैं। जिस समय वाण शय्या पर वह पड़े हुए उपदेश दे रहे थे उस समय द्रोपदी हँस पड़ी। और कहने लगी कि महाराज जिस समय दुःशासन भरी सभा में मुझे नग्न करने की चेष्टा कर रहा था उस समय मैंने आप से प्रश्न किया था कि जब युधिष्ठिर अपने आपको जुये में हार गया है उसका क्या अधिकार था कि वह मुझे जुये में हार जाय, तो आपने उत्तर दिया था कि मेरी बुद्धि काम नहीं करती इस पर भीषम पितामह ने उत्तर दिया कि पुत्री ! उस समय मैं कौरवों का अन्न खाता था और उनका सेनापति था इस कारण मैं ठीक विचार न कर सका। अब रक्त जो उस कौरवों के अन्न से बना था वह इस शरीर से निकल गया है इसलिए अब मेरी बुद्धि ठीक है आदि आदि।

मैं समझता हूँ कि जो कुछ भीषम पितामह ने कहा था वह सत्य था। मैंने स्वयं जीवन में अपने परिश्रम की जीविका से जीवन व्यतीत किया है और अब तक भी स्वयं ही परिश्रम करके जीविका उपार्जन करता हूँ। इस नियम पर चलने से और साधन अभ्यास से और महर्षि दातादयाल जी के पवित्र पुनीत अस्तित्व के संस्कार से मैं प्रतीत करता हूँ कि मेरी बुद्धि, विवेक और अनुभव अधिकतः निर्मल हैं और मैं गुढ़ातिगूढ़ रहस्य को समझता हूँ। और जीवन में कभी भी हेर फेर कर बात नहीं की। यद्यपि संसार में घरेलू और पांथिक जगत मेरे साथ सहमत नहीं है। अनेक विरोधी भी हो जाते हैं किन्तु विवश हूँ अपने कर्म भोग वश तथा मौज मालिक के अन्तरगत कहना चाहता हूँ कि जब तक हमारे राजनीतिक नेता और मंत्रीगण स्वयं अपने परिश्रम से उत्पन्न की हुई जीविका पर निर्भर रहने वाले तथा साधन सम्पन्न, एकाग्रचित्त और सतपुरुषों के सतसंग से

लाभान्वित नहीं होंगे इनके भीतर सच्ची बुद्धि, सच्चा विवेक उत्पन्न होना ही असंभव है। वह लाख प्रयत्न भी करें उनको सत्य व्यवहार और क्रियात्मक उपाय का विचार ही उत्पन्न नहीं हो सकता है।

सुनो ! हमारे देश में श्री क़िदवाईजी के जीवन का उदाहरण आपके सम्मुख है। मृत्यु के पश्चात वह ऋणी निकले। इससे सिद्ध हुआ कि वह साधू वृत्ति के व्यक्ति थे और अपने परिश्रम से उपार्जन की हुई जीविका पर निर्भर थे। इनकी बुद्धि ने भारत की खाद्य पदार्थ अवस्था को बहुत कुछ ठीक कर दिया था। अतः अपने कर्म भोगवश लिख रहा हूँ कि जब तक देश के नेतागण सच्चे साधू तथा संत न होंगे मानव जाति का कल्याण असम्भव है। मैं सच्चे हृदय से चाहता हूँ कि सच्चे साधू और संत देश के शासन का भार अपने ऊपर लेकर मानव जाति का कल्याण करें।

यों तो मौज के आधीन प्रत्येक बात है किन्तु मेरा यह लेख भी तो मौज आधीन ही है। इस अनुभव के आधार पर देश के नेताओं और धार्मिक और पांथिक आचार्यों से प्रार्थना करूँगा कि जीवन क्रियात्मक और साधन सम्पन्न बनाओ वरन् स्वयं तो डूबोगे ही मानव जाति को भी साथ में लेकर डूब जाओगे। जनता यदि त्रुटि करती है तो वह किसी सीमा तक क्षमा के योग्य है किन्तु प्रकृति में आप सज्जनों के लिए कोई क्षमा का अवसर नहीं है।

मैंने सम्पूर्ण आयु पंथ और इस पंथ की खोज में व्यतीत की है। मेरा जो अनुभव निकला है यदि वह सत्य है तो मैं चकित हूँ कि वर्तमान उपदेशक और महात्माओं ने क्या किया।

बात कुछ थी बताई कुछ जारही है और अज्ञानी निबल और अबल जीवों को बुरी प्रकार त्रुटि पूर्ण विधियों से अपने

स्वार्थ सिद्धि का यन्त्र बनाया जा रहा है।

सन्तमत का प्रकाट्य इसी कारण कलियुग में हुआ है। मानव जाति को सत्यता और वास्तविकता वर्णन करके उनको अपनी वास्तविकता और संसार की वास्तविकता बतलादी जावे मुझे प्रसन्नता है कि मौज मुझको दातादयाल महऋषि जी महाराज के पवित्र चरण कमलों में ले गई। उस पवित्र पुनीत विभूति ने सन्तमत की सत्य शिक्षा का अनुभव करा दिया और विवशतः उनके आदेशानुसार मुझे इस सतसंग का कार्य करना पड़ता है। न कुछ लेना न कुछ देना। वास्तविकता और सत्यता का वर्णन करता हूं।

कोई सुने या न सुने मेरी बला से।
हमने काम किया दाता का हुक्म बजा के॥
जैसी मौज करावे करूँ वही कामा।
हम हैं निर्पक्ष भाई और निष्कामा॥
सुनो दयाल, अकाल, परमतत्व दाता।
तुम्हरे चरणों में हूँ शीश नवाता॥
बुद्धि फेरो मेरी ऐ परम पिता दाता।
गर मौज नहीं ऐसी ऐ मेरे दाता॥
जगत के भाव पड़ें दिल के ऊपर।
उनके बस करूँ काम मैं दिल लगाकर।
प्राणी मात्र को शान्ति।
सौदे दुनियाँ के किये, नफ़ा टोटे भी सहे।
है नफ़ा जिसमें छुपा, वह सौदा करले आनकर॥

पत्रोत्तर परमदयाल का दयालस्वरूप नन्दू भाई जी के नाम

प्रिय नन्दू भाई! राधास्वामी

पत्र मिला, प्रसन्न रहो! मेरे जीवन की खोज और साधन का परिणाम मेरे सम्मुख है उसके आधार पर लिख रहा हूँ।

बहुत बहुत कुछ मैंने सुना था और बहुत बहुत कुछ अनुभव किया।
पंथ में आ करके भी मैंने योग युक्ति कर देख लिया॥
अब है ऐसी दशा कि भूल रहा हूँ अब मैं सबको अज़ीज़।
जाते मालिक का भेद मिला क्या उसको भी मैं जान लिया॥
ला मुहीत, लामकानी और लाज़वाली, एक वह अवस्था है।
उसमें न कोई "मैं" ही रहा, और "तू भी" ग़ायब हो ही गया॥
होश में आकर सोचने पर, मजबूर होता हूँ नन्दू भाई।
क्या वह अवस्था ही है मालिक, बार बार यों सोचता रहा॥
गर है वही हालत तो मुझमें, यह ताक़त होनी चाहिए।
जो सोचूँ वह पूरा होवे, गर मैं मालिक रूप बना॥

चूँकि समस्त संकल्प, पूर्ण नहीं होते इसलिए कहता हूं:—

अब हिम्मत है नहीं कहूँ कुछ, वह ज़ात हक़ इन्सान आप ही है।
हाँ अल्बत्ता जब वह इस अवस्था में रहता है खुद ज़ात ही है॥

शब्द सम्पुष्टि

जब सुरति होवे देह में देह रूप ले जान।
जब सुरत उलटै गगन में, हंस रूप पहँचान॥ (राधास्वामी दयाल)

इन्सान भी गर वही है तो, उससे दूसरों को क्या फ़ायदा मिला।
वह अपनी ज़िन्दगी को खोकर, वासिल हक़ खुद हो ही गया॥
इन तजरुबातकी बिना पर मैं भी, मजबूर होकर आवाज़ देता चला।
न खुदा बनो न ब्रह्म बनो तुम, न ज़ात की तुम दो कभी सदा॥
ज़िन्दगी जब तक क़ायम है, दीवानो! तुम इन्सान बनो।
रूप अपना निज जानलो तुम, फिर चेतन के परवाने बनो॥
तुम ही हो चेतन के बुलबुले, इससे बढ़कर हस्ती नहीं।
खुद जीओ जीने दो सबको, प्रेम प्रीति से खुश तुम रहो॥
वक्त आने पर बुलबुला यह भी, टूट जायगा होश करो।
टूट फूट कर वह जुज़ खुद भी, असल से अपने जाय मिलो॥

फिर यह जीवन का समस्त खेल स्वयं ही समाप्त हो

जावेगा। समस्त जीवन इसी उधेड़ बुन में खोने के पश्चात् जो निज अनुभव हुआ उसका वर्णन कर चला हूँ और दाता के आदेशानुसार सन्तमत की शिक्षा में परिवर्तन कर चला हूँ क्योंकि

हजूर दातादयाल ने सुनाम स्टेशन पर जहां पर मैं स्टेशन मास्टर था सतसङ्ग में वर्णन किया था कि फ़क़ीर समय में परिवर्तन आ जागया। अपने शरीर त्यागने से पूर्व शिक्षा में परिवर्तन कर जाना।

नहीं मालूम है मुझको, कि मैंने जग में आकर क्या क्या किया।
करने वाले ने करा लिया बस, रखकर मुझको सबसे जुदा॥

यह समझकर कि संभवतः मैं त्रुटि पर हूँ, जीवन के शेष दिवस उस परमतत्व दातादयाल के प्रेम में मग्न रहकर व्यतीत करना चाहता हूँ। यदि कुछ और भी अनुभव होगातो वह भी कह अब मैं अधिकतर एकान्त में रहता हूँ यदि आप तथा अन्य महान पुरुष अपने जीवन के निज अनुभव के आधार पर न कि पुस्तकीय ज्ञान के आधार पर मेरी बातों को त्रुटि पूर्ण विचार करें तो बड़ी प्रसन्नता से इनका खंडन करें जिससे कि संसार के प्राणी पथ भ्रष्ट न होने पावें।

मैं नाक कटों में सम्मिलित नहीं होना चाहता। हजूर दाता दयाल ने कबीर योग में नाक कटों का एक उदाहरण दिया है उसका अध्ययन कर लेना।

—❀❀—

प्रार्थना

तेरे इश्क़ में दातादयाल, तुझे ढूँढ़ने निकला था मैं।
अब तक नहीं मिला मुझे, खुद आप ही मैं खो गया॥
खुदी को खोना है तेरा, मिलना समझ में आगया।
मौज आधीन अभी तन है बाक़ी, काम तेरा कर रहा॥

अच्छा है यह या है बुरा, इसका नहीं सोच विचार।
जो कराता आप तू है, मैं भी वही करता रहा ॥
लब खुले और बंद हुए, यह राज जिन्दगी का समझ।
इस वक़फ़े में जो खेल है, वह ही बना जीवन मेरा ॥
राधास्वामी आप सूरज, मैं किरन तेरी ज़रा।
निकलना तुझसे जिन्दगी है ग़रक़ तुझमें हो चला ॥

पत्रोत्तर परमदयाल जी महाराज का दयाल स्वरूप नन्दू भाई जी के नाम

ख़त मिला है तेरा हे नन्दू, पढ़ी तारीफ़ जो लिखी तुमने।
उम्र गुज़री है तलाश में मेरी, कहता हूँ जो कुछ पाया हमने ॥
उसके प्रेम में मग्न रहकर, खुद फ़रामोशी रहती है।
इस बेसुधी में हस्ती मेरी, आनन्द पाती रहती है ॥
अनुभव ज्ञान विवेक हुआ है, समझा राज़ इस हस्ती का।
समझ के खेल जगत् का खेलूँ, देता ख्याल हक़ीक़त का ॥
अभी तलक हौसला नहीं पड़ता, मानूँ इन्सान खुदा है एक।
गर यह बात सही है भाई, अज़माता हूँ सहत विवेक ॥

वह परीक्षा क्या है ?

मानुष जाति सुखी सदा रहै, हँसी खुशी दे जिन्दगी गुज़ार।
मानवता का राज अब आवै, जीवों पर न हो दुख का भार ॥
न कोई किसी पर जुल्म करे, न कोई किसी को मारे यहाँ।
यही है आरजू दिल में भाई, मौज दयाल हो जल्दी यहां ॥
राम राज वही राज कहलाता, जिसमें दुख न किसी को।
सदा सुखी रहें प्राणी निसदिन, खुशी का जीवन सबका हो ॥

यदि मेरी यह इच्छा पूर्ण होगई तो संसार समझले कि प्राणी भी वही हो सकता है जो परमात्मा तथा ब्रह्म है वरन् केवल गुरू ज्ञान ही वास्तविकता है।

यह संसार काल और माया का है इसका रचियता स्वयं ही यथार्थ में जानता है कि क्या होना है अथवा क्या करना है। हम सब प्राणी उसकी लीला के यन्त्र हैं।

करे करावे आप ही आप। मानुष के नाहिं कुछ भी हाथ॥

ऐसी दशा में:—

इन्सान है बुलबुला चेतन का, ताक़त किसी और के हाथ में है।
वह ताक़त कर्तार जगत की है, महिमा उसकी साथ में है॥
होने वाला जो है भाई, होगा वह खुद आपसे आप।
काम कब निकला किसी का यहां पर, कोई करे लाख तोल और माप
भ्रम के बस में सभी पड़े हैं, दौड़ते फिरते रात और दिन।
भेद अनजाने खुदा का अब तक, किसी के हाथ न आया गुनगुन॥
महिमा उसकी अपार अदभुत, वर्ण सके न ऋषी मुनी।
डूब रहे भवसागर में यहां, खाते गोता गुनी औगुनी॥
जो कुछ है समझा मैंने, अपनी ज़िन्दगी के खेल में।
वह नहीं निकला, जो समझता था, पोथियों के मेल में॥
सच्चे हृदय से दुआ देता हूँ, और रखता हूँ आरज़ू।
दातादयाल खुश रक्खे तुम्हें, और हर तरह से सुरख़रू॥
मेरे लिए भी, दुआ करते रहना प्यारे नन्दू।
जब तलक जान में जान है मैं रहूँ दाता का चरन बिन्दू॥
गर उसने न दिया होता, काम जगत् कल्यान का।
मैं न करता ख्याल हरगिज़, जगत के कल्यान का॥
बे बस होकर के, मैं हूँ घसीटा जा रहा।
अपने बस में कुछ नहीं है, बहम और भरम मिट रहा॥
खुश रहो, पुर आस हो, और पुर उम्मीद तुम रहो।
वह ज़ात दयाल रक्षक है, सबका यह यक़ीन कामिल रक्खो॥
शिव मङ्गल, पुत्री, और बहन को राधास्वामी तुम कहना।
इसी खुशी से जीवन गुज़रे, सदा सुखी जीते रहना॥

हजूर दातादयाल रक्षक तेरे, पल छिनके रखवाली हैं।
ज्ञात में उनकी लीन रहो तुम, सदा सुखी खुश हाली हैं॥

शब्द दातादयाल जी

ध्यान तक करता नहीं है, कोई मेरी बात का।
क्या कहूं मैं भेद उनमें, मुझमें दिन का रात का॥
काल ने चोटी पकड़ रक्खी है, सबकी हाथ में।
फिर भी यह करते हैं झगड़ा, पाँति का और जाति का॥
सबकी उत्पत्ति स्थिती और, लय की लीला एक है।
जिसको देखा न्यून जीवन, कीड़ा था बरसात का॥
आये हैं सो जायगे, रहने नहीं आया कोई।
ज्ञान होता ही नहीं है, इनको जम की घात का॥
यह सहेंगे कष्ट आपत्ति, सुनने वाला कौन है।
बात को कब मानता है, देवता जो लात का॥
राधास्वामी ने कहा, सब प्रेम के रस्ते चलें।
ध्यान यह करते नहीं हैं, सतगुरू की बात का॥

कर्म भोग अथवा मौज

(ले० परमदयाल जी महाराज)

आज समाचार पत्र से विदित हुआ कि कांग्रेस कमेटी अधिवेशन चंडीगढ़ में श्री नहरू जी ने कहा कि माला फेरने तथा ईश्वर को स्मरण करने आदि से काम नहीं चलेगा वरन् कार्य रूप से देश का उत्थान हो सक्ता है।

अपने कर्म भोग वश अथवा मौज आधीन सारभेद को प्रगट करना चाहता हूँ। प्रत्येक प्राणी अपनी दृष्टि कोण से बात करता है और श्री नहरूजी के शब्दों का क्या भाव वास्तव में है उसको तो यथार्थ में ही वही जानते होंगे। मैं उनके शब्दों के साथ सहमत हूँ परन्तु जन साधारण सहमत न होंगे। वह उनको

नास्तिक और पथ भ्रष्ट समझते हैं। मेरे पास अनेक सज्जन आते रहते हैं और विशेषतः धार्मिक जगत के प्राणी श्री नहरू के इस प्रकार के विचारों से घृणा करते हैं। जिस दृष्टि कोण से उन्होंने कहा है उसी दृष्टि कोण से संत कबीर ने भी कहा है।

माला फिरूँ न हरि भजूँ मुख से कहूँ न राम।
मेरा राम मुझे जपै तब पाऊँ विश्राम॥

यह एक परम संत की वाणी है और स्वर्ण शब्दों में अङ्कित किये जाने योग्य है। किन्तु इसके अधिकारी कहाँ हैं। श्री नहरू जी का विचार देश की उन्नति के विचार से है। किन्तु देश की उन्नति अथवा देश की शान्ति तथा समृद्धता तभी हो सक्ती है जब कर्म करने वालों का अपने मन पर नियंत्रण हो और स्वच्छ तथा निर्मल बुद्धि वाले हों।

यह माला का फेरना, संयम, नियम, जप तप आदि केवल इस मन को नियंत्रण में रखने के लिये हैं। ईश्वर भक्ति आदि का तात्पर्य निबल अबल जीवों को सहारा देना है। जो प्राणी अपने मन पर अधिकार नहीं रख सक्ते हैं उनके लिये यह अनिवार्य है कि वह कोई ऐसा साधन करें जिससे उनको अपने मन पर अधिकार करना आ जाय। वर्तमान राजनीतिक नेता स्वयं विचार करें कि वह क्यों स्वार्थ परिता और अहंभाव में फँस गये हैं क्यों कि उनके मन नियंत्रण में नहीं रहे और मन की तरंगों और वासनाओं में बह रहे हैं। त्रुटिपूर्ण लोभ लालच, मान प्रतिष्ठा, क्रोध अहंकार में फँसकर वह कार्य कर रहे हैं कि उसका परिणाम सब पर विदित है। काँग्रेस की अब वह मान प्रतिष्ठा नहीं रही है जो प्रारम्भ में थी। बहुधा तात्पर्य को न समझकर अन्य की बात का त्रुटि पूर्ण आशय विचार कर बात का बतंगड़ा बना लेते हैं।

मेरे विचार में शासक व नेतागण तथा मंत्रीगण जिनका

मन अपने अधिकार में नहीं है जब तक वह कोई साधन न करेंगे सहस्र प्रयत्न करने पर भी देश का उत्थान न कर सकेंगे और देश शान्ति मय और समृद्धिशाली न हो सकेगा। परीक्षा करके देखलो। अतः निर्पक्ष और निःस्वार्थ होकर कहरहा हूं कि जबतक संतजन अथवा सच्चे साधू जिनका मन अपने वश में है शाशन में न सम्मिलित होंगे तब तक कोई पार्टी सफलता प्राप्त न कर सकेगी। और साथ साथ ही जनसाधारण भी साधन युक्त न बनेंगे जिससे कि मन पर नियंत्रण हो सके सफलता न होगी।

इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं है कि माला फेरने वाले तथा अन्य साधन अभ्यास करने वाले बिना किसी पूर्ण पुरुष के सतसंग के बिना पथ भ्रष्ट भी होजाते हैं। वह काम साधन आदि के अभिप्राय को न समझकर उसी में फँस जाते हैं और उनको उस काम का अहंकार होजाता है। जहां अहंकार आया सब कार्य नष्ट भ्रष्ट हुआ किसी के विचार में परिवर्तन लाना सुगम नहीं है माता पिता और जन्म जन्मान्तरों के संस्कार शीघ्र ही परिवर्तन में नहीं आसक्ते । समय और उपाय की आवश्यकता है।

यदि श्री नहरू जी के विचार जो किसी सीमा तक सत्य हैं बिना व्याख्या किये हुये फैलाये गये तो जन साधारण उनको स्वीकार न करेंगे। परिणाम ठीक नहीं होगा। मेरा अपना जीवन अपने सम्मुख है। यदि मैं साधन अभ्यास न करता और दाता दयाल की पवित्र पुनीत विभूति से संम्पर्क न होता तो मैं संभव है कि अत्यन्त दुखी और कष्ट में होता।

गुरु बिन माला फेरते गुरु बिन देते दान ।
गुरु बिन नाम हराम है आय पूछो वेद पुरान ।।

सतगुरु नाम है सार भेद, सार ज्ञान, सार समझ और सार

अनुभव का सच्ची समझ, सच्चे विवेक से अर्थात् समझ बूझ कर माला फेरो जिससे कि मन अधिकार में आये। अपनी धन सम्पत्ति को स्थिती और परिस्थितियों और समझ बूझ के अनुसार परोपकार में व्यय करो। जो ऐसा न करेगा । यह माला फेरना, जप, तप, तथा अन्य साधन सब के सब हानिकारक होंगे। प्राणियों ने त्रुटि से अपने जीवन नष्ट भ्रष्ट किये हैं। चार दिन हुये दो सज्जन जिन्होंने त्रुटि पूर्ण गुरु सिद्धान्त के अन्तरगत अपनी समस्त धन संपति दे डाली परन्तु गुरू महाराज चार सौ बीस निकले विचार आता है कि स्पष्ट लिखूँ किन्तु मेरा भाव किसी को बुरा भला कहने का नहीं है इसलिये संकेत करता हूँ। इसी प्रकार देश उत्थान, समृद्धि के लिये मैं विवशतः कर्म भोग वश अथवा मौज आधीन सम्मति दे रहा हूं कि देश के शाशन की बागडोर ऐसे महान पुरुषों के हाथ में हो जिनको अपने मन पर अधिकार प्राप्त हो। जब तक ऐसा न होगा सहस्रों प्रयत्न करने पर भी महात्मा गांधी के रामराज्य का स्वप्न पूर्ण न हो सकेगा।

कहता हूँ कह जात हूं कहूं बजाये ढोल।
बिन कामिल पुरुषों के सहयोग से मुल्क में रहेगा पोल ॥

मौज ने मस्तिष्क को जोगति दी लिख दिया मैं न राजनीतिज्ञ हूँ और न धार्मिक जगत से कोई संबंध है वरन मैं केवल मनुष्य हूं।

गुरु पशु, नर पशु, त्रिया पशु, वेद पशु संसार।
मानुष सोई जानिये जाहि विवेक विचार ॥

किन्तु यह विवेक विचार साधन पूर्ण पुरुष के सतसंग के विना न आवेगा। और इस साधन की विभिन्न क्रिया हैं माला फेरना, ईश्वर भक्ति आदि आदि। इन साधनों अथवा संयमों के बिना मन पर अधिकार पाना असंभव है।

भाई गनपत लाल जी वर्मन का पत्र परम दयाल फ़क़ीर साहब के नाम।

हे अंधेरे हृदयों को प्रकाशित करने वाले? तू अनन्तानंद है हमारी सोपानों को सुगम करदे, हमारे अन्धकार मय हृदयों में विराजमान होकर, संसार के तिमिर और अज्ञान से बचाकर संभाल ले।

ग़ज़ल

तेरा दम रहे सलामत, तेरे दम से रौशनी है।
तेरे दम का आसरा है, तेरे दम से ज़िन्दगी है॥
तू है शमये वज़मे इरफ़ाँ, तू है शमसे नूरे इरफ़ां।
तेरे नूर से है रौशन, मेरे दिल को क्या कमी है॥
मेरी ज़िन्दगी को लेले, मेरी जां तेरे हवाले।
तू मेरा है जाने जानां, मेरी तुझसे हो बनी है॥
तू हुआ मेरा निगहबाँ, हुई मेरी मंज़िल आसां।
तेरे दरका मैं पुजारी, मेरे सर का तू धनी है॥
तू ही मीरे फ़रवाँ है, तू ही पीरे जाविदां है।
तेरी हस्ती पै हूँ नाज़ाँ, मेरे दिल का तू ग़नी है।
यह नहीं है वक्ते हिजरत, अभी शब नहीं है गुज़ारी।
हमें छोड़कर न जाना, अभी जल्दी क्या पड़ी है॥
तेरी हमको है ज़रूरत, तेरी जग को है ज़रूरत।
अभी हम नहीं हैं संभले, अभी दिल में बेकली है॥

दाता कुसमय और निःकारण चले गये। अपनी आयु के दश वर्ष एक मृतक वर को विवाह के मंडप में देकर जीवित कर दिया था और न जाने इस प्रकार अपनी आयु का कितना भाग कितने प्राणियों को दे डाला था खेद है व्यक्तियों ने दाता को बुरी प्रकार नौचा खसीटा। वह अपना सब कुछ भिखारियों को दे

दिलाकर पूर्ण धनी होगये थे। केवल उनकी ज़ात परमतत्व, परम-सत्त चौथे पद में बिचरने वाला आपा शेष रह गया था और उस असीम अनन्त सत से सहस्रों को लाभान्वित किया जाते हुए आपको अपना उत्तराधिकारी बना गये और सहस्रों को शोकग्रस्त कर गये। विरोध होते हुए आपको अग्रगामी बनाया और सत्यता का बोल-वाला हुआ और सत्य की जय हुई। आपकी पवित्र पुनीति विभूति का सहस्रों को आश्रय मिला हुआ है। जो दाता के पुजारी थे वह अब आपको ही दाता के रूप में देखते और मानते हैं। जो दाता के नामधारी थे अब उनको आपकी शरण से लाभ होरहा है और उनकी कमी पूर्ण हो रही है। दाता का जिस प्रकार दया का हाथ अधिकारियों के सिर पर रहा करता था आप भी उसी प्रकार हम पापियों के सिर पर हाथ फेर कर भार उतारने का कार्य कर रहे हैं। आप दाता के रूप में हमारे स्वामी और दीन प्रतिपालक हैं। हे पंथ सम्राट! हे सहज संत! हे जगत प्रकाशक! आत्म दर्शक तू हमारे सिरों पर सदैव छाया रूप बना रहे। हमारी आयु, हमारा जीवन सब कुछ तेरा है, तू लेले चूँकि यह तूने ही दिया है और अब तेरी ही दया से स्थित है। हे दातादयाल, हमारा आपके समान कोई संरक्षक नहीं था, हम काल और माया के चक्र से भ्रमित थे। हमारे अंधकारमय हृदयों को प्रकाशित करने वाला सुगमता से पर्याप्त नहीं था। दाता के जीवन में हमारी आँख नहीं खुली थी। हमारी दशा असमंजस में थी और हम ऐसी परिस्थितियों में ग्रसित थे जब कि आपने ऐसे समय में दाता की मौज से अपनी दया से हमको संभाला और हमारी त्रुटियों को दूर होने का यत्न का पाठ पढ़ाया। हम अपने आपको भाग्यवान समझते हैं और दातादयाल से सविनय, सम्मान पूर्वक, प्रेमवश, शुद्ध पवित्र हृदय से प्रार्थना है कि हे दाता! तूने अपने पश्चात जिस पूर्ण पुरुष को हमारी संभाल

और सुधार के लिए नियुक्त किया था उनकी दीघ्रायु कर जिससे कि हम पूर्णतः लाभान्वित हो सकें और तेरा नाम लेकर इस मृत्यु लोक से चल कर तेरे चरणों में आश्रय लें। शान्ति शान्ति

शब्द [दातादयाल]

मन तू सोच समझ पग धार।टेक।
बिन समझे कोई सार न पावे भटके बारम्बार।
संशय दुबिधा और चतुराई यह अज्ञान विकार॥
कोई नर पशु है, कोई त्रया पशु, गुरु पशु कोइ गंवार।
वेद पशु है सब संसारा बिना विवेक विचार॥
माया पशु माया का बँधुवा, मुक्ति पशु स्वीकार।
भक्ति पशु बँधन नहीं काटे, बूड़े कालीधार॥
ज्ञान पशु की क्या करूं निन्दा वह ग्रन्थन की लार।
जड़ चेतन की गाँठ न खोले उरझ २ रहा हार॥
योग पशु बंधा योग की सीढ़ी बैठा आसन मार।
राधास्वामी चरन शरण बलिहारी सेवक हुआ भव पार॥

ज्ञान अज्ञान

(ले० दयालस्वरूप नन्दूभाई जी महाराज)

बात है क्या ? और प्राणी समझते हैं क्या ? जो वस्तु समझ बूझकी नहीं है उसे समझ बूझ के आधीन करना यदि मूर्खता नहीं है तो और क्या है ? किन्तु इस प्रकार कहने से लाभ की अपेक्षा हानि का भय है। इसलिये ज्ञान और अज्ञान का क्रम संसार में चला हुआ है और दोनों अपनी २ चाल चल रहे हैं। जो स्वाभाविक है। विश्वासी जिज्ञासू शिष्य और कृपालू गुरू का प्रकृति में ऐसा मेल कभी कभी संयोगवश मिलता है। वरनः गुरु और शिष्यों से संसार भरा पड़ा है। जिसे देखिये या तो गुरू

बना हुआ है अथवा गुरू का शिष्य है। और गुरु का शिष्य भी कैसा ? जो गुरू का गुरू बनने का जिज्ञासू और इच्छुक है।

अन्धा गुरु और बहरा चेला। दोनों खेलें खेल अमोला ॥
इसके जनेऊ न इसके चोटी। मन के निचले बुद्धि खोटी ॥
बुद्धि से जब चले न काम। दोनों मिलकर लें राम नाम ॥
राम नाम से फूले तन में। कोई घर साजा और कोई बन में ॥
घर बन से जो न्यारा खेले। कोई कोई बिरला जग को ठेले ॥
जग को ठेल करे विश्राम। मुक्ति न अर्थ न धर्म न काम ॥
राधास्वामी कहें समझाई। सार तत्व तुम लेओ बुझाई ॥

—=—

आत्म ज्ञान और अज्ञान दोनों से न्यारा है। जिस ज्ञान का संसार को अहंकार है वह ज्ञान ज्ञान नहीं है। बल्कि आत्मा स्वयंम ज्ञान है। वह ज्ञान से भी भिन्न है और अज्ञान से भी भिन्न है। इन दोनों में से किसी की भी उस तक पहुँच नहीं है। कहने सुनने को जो चाहे कह सुन लिया जाय। संसार में ज्ञान मार्ग का क्रम भी चला हुआ है और अज्ञान मार्ग का क्रम भी चला हुआ है। यह दोनों चलते हैं, चलेंगे और चलते रहेंगे। जो गम्य है। उसके लिये गम्य का शब्द प्रयोग करना वृथा है। यह गूँगे का विषय है। न ऐति है न नेति है, न हाँ है न ना है, न धन है न ऋण है, न यह है न वह है। जिभ्या बन्द होट चुप।

मैं आरम्भ से कहता चला आ रहा हूँ कि ज्ञान वह ज्ञान नहीं है वरन् यह उससे भिन्न भी है। यह कोई और ही वस्तु है। उसी की सत्ता से यह दोनों सत्ता वाले हो रहे हैं। उदाहरणतः पक्षी के दो पर होते हैं। वह दोनों का आश्रय लेकर उड़ता है। अपने दोनों परों की ओर अथवा वह दाँये बाँये नहीं उड़ता वरन् मध्य मार्ग ग्रहण करता है। उसकी गति मति भी प्रथक प्रथक है। यद्यपि यह लक्ष्य भी नहीं। जैसे पक्षी दोनों परों से उड़ता

है और उनकी दिशा को ध्येय नहीं बनाता। उसी प्रकार ध्येय तथा लक्ष्य न ज्ञान है और न अज्ञान है वरन् वह इनसे प्रथक है। अज्ञानी टटोल २ कर कर्म करते हैं और अन्धकार में रहते हैं। और ज्ञानी ज्ञान के अहंकार में आत्मा को न जानते हुये दिन रात उसपर लड़ते झगड़ते रहते हैं इस लिये ज्ञानी और अज्ञानी दोनों उससे वंचित हैं। साधारणतः आत्मा प्रत्येक प्राणी को प्राप्त होता हुआ भी अप्राप्त है। प्रत्येक को नहीं मिलता। जिसको यह आत्मा स्वयं चाहता है उसी को मिलता है। यह षट उपनिषद् का मंत्र है। विचार शील वह होते हैं जो न ज्ञान में और न कर्म में लिप्त होते हैं वरन् दोनों का मध्य मार्ग ग्रहण करते हैं। "मध्य मार्गी सदा सुखी"। वह सम्बन्ध में निसंबन्ध और निः संबंध में संबंधित होते हुये अपने ध्येय की प्राप्ती कर लेते हैं।

एक कहै तो है नहीं दूजा कहूँ तो गार।
जैसा है तैसा रहे कहे कबीर विचार॥

(१) शब्द ज्ञान अज्ञान

मैं नहीं योगी न भोगी, मैं नहीं ज्ञानी बना।
ध्यान करता किसका कब मैं, भूल कर ज्ञानी बना॥
कर्म है अज्ञान और यह ज्ञान है, अज्ञान रूप।
कर्म करता हूँ नहीं, कर्मों से अज्ञानी बना॥
जो बना बिगड़ेगा, बनते को बिगड़ते देख लो।
जैसा हूँ वैसा हूँ, कब क्रोधी बना मानी बना॥
ज्ञान की पोथी पढ़ी, वाचक बना बहका बहुत।
उससे कह दो इससे क्या पाया, जो अभिमानी बना॥
धन्य सतगुरु राधास्वामी, ज्ञान का परिचय दिया॥
बूंद सागर से मिला जब, क्या बना, पानी बना॥

——o——

(२) नज़्म

फ़िल्सफ़ी को यह है ग़ुरूर, फ़िल्सफ़ा है राहे हक़।
बनगया यह फ़िल्सफ़ा, जहले मुरक्कब बेहिजाब॥
आलिमों को ज़ौम है, सच्चा है उनका इल्मे हक़।
एक करता है सवाल, और एक देता है जवाब॥
कोई अटका दीन में, दींदारी में मग़रूर है।
हक़ से दीं को क्या है निस्बत, यह नहीं राहे सवाब॥
चश्मे बीना होती है, दीदारे हक़ से बेगुमाँ।
हक़ नहीं अहमक़ का साथी, समझें इसको शेख़ोशाब॥
शाज़ मिलता है परिन्दों में, कभी ताइर हुमाँ।
इस तरह तालिब हक़ीक़त का, कोई होगा जनाब॥

परमदयाल जी का पत्रोत्तर भाई गनपतलाल जी बर्मन के नाम

आपका पत्र मिला ध्यान पूर्वक पढ़ा। उत्तर सहित उसको लौटा रहा हूं जिससे आपको विचार करने का समय मिले और फिर शान्ति और ढाढ़स प्राप्त हो। यद्यपि अभी अन्तिम अवस्था और सन्तोष प्राप्त करने का समय नहीं आया है किन्तु सन्निकट है। आपसे सिद्ध होता है कि आपमें अभी तक वह अवस्था उत्पन्न नहीं हुई जिसके उत्पन्न होने के पश्चात् किसी वस्तु की आवश्यकता का भाव नहीं होता। उसका नाम है विदेह मति।

मुझे खेद है कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ उसके लिये उपर्युक्त शब्दों का अभाव प्रतीत होता है। क्या पता संतों ने इसी निमित्त कहा हो "हे विद्या तू बड़ी अविद्या, तैं संतन की क़दर न जानी" किन्तु बिना शब्दों के चारा नहीं इसलिये विवशता है। कोई कोई गुरू आत्मिक शब्दों के रहस्य का अनुभव करता है और समझता भी उसी दृष्टिकोण से है।

सुनो गनपतलाल भाई के नाते कहता हूँ कि यह सृष्टी किसी के संकल्प से उत्पन्न हुई है। चूँकि सृष्टी में कारण, सूक्ष्म और स्थूल प्रकृती विद्यमान है इसलिए इस स्थूल रचना का निर्माण किसी ऐसे पुरुष के संकल्प से होना चाहिए जो स्वयं शरीर धारी अर्थात् स्थूल प्रकृति वाला हो। जो शरीरधारी नहीं वह स्थूल रचना का संकल्प न तो कर सक्ता है और न उसका संकल्प किसी शरीरधारी व्यक्तित्व में परिवर्तित हो सक्ता है।

मैंने गत मास ही एक मित्र के प्रश्न के उत्तर में अपना अनुभव मनुष्य बनो को भेजा है जिसमें यह वर्णन किया गया है कि सर्व प्रथम मानव भू लोक में किस प्रकार उत्पन्न हुआ, किसने उत्पन्न किया, कहाँ उत्पन्न हुआ और कब उत्पन्न हुआ और उसका क्या कर्तव्य है। यह लेख अद्वतीय है। उसको ध्यान पूर्वक अध्ययन करना तुमको विश्वास हो जायगा। तुम ही को नहीं वरन् प्रत्येक व्यक्ति को जो मन और मस्तिष्क रखता है मानना पड़ेगा कि जो कुछ उसमें वर्णन है वह सत्य है। संक्षेप में कहता हूँ कि हम समस्त प्राणी अपने पूर्वजों के संकल्पों से और प्रारब्ध कर्मानुसार प्रगट होते आये हैं और कुछ अपने और कुछ अपने पूर्वजों के संस्कारों को साथ लेते हुये इस काल चक्र में फँसे हुये और अनन्त काल से जीवन व्यतीत करते हुये चले आ रहे हैं। किन्तु इन समस्त संकल्पों के जीवनों में आदि पुरुष जिसके संकल्प से सर्व प्रथम मानव की भू लोक में उत्पत्ति हुई उसका संस्कार हमारे जीवनों में विद्यमान है।

वह इस सर्व प्रथम मानव को बनाने वाला शरीरधारी पुरुष है। मेरे विचार में सन्त उसको कालपुरुष, सोहंपुरुष अथवा कर्त्ता-पुरुष कहते हैं। शास्त्रों के अनुसार विराट पुरुष उसका शरीर है। अव्याकृत उसका मन है और हिरण्यगर्भ उसका आत्मा है। उसी को ब्रह्म भी कह सकते हैं।

चूँकि उस आदि पुरुष ब्रह्म के संकलप से जिससे यह रचना हुई उसमें सत चित आनन्द का संस्कार था। इसलिए यह सतचित आनन्द ही हमारे प्रत्येक जीवन में विद्यमान है और हम सबके सब जो कुछ भी करते हैं वह सब इसी प्रसन्नता और आनन्द की प्राप्ती ही के लिए करते हैं। यद्यपि उसकी सहस्त्रों आकृतियां हैं। मेरी बात का विश्वास न हो तो भाई नन्दूसिंह जी के सतसंग के वचन, दातादयाल के लेख, पं० ब्रह्मशंकर जी के प्रवचनों का अध्ययन कीजिये। संत मत में प्रेम भक्ति और श्रद्धा क्या है? यह प्रसन्नता और आनन्द ही है।

जितने मत मतान्त,पंथ, सम्प्रदाय हैं यद्यपि वह कोई भी क्यों न हों सबके सब अनन्य रूपों में प्राणी को इसी प्रसन्नता और आनन्द की प्राप्ती करने की युगों के धर्मानुसार शिक्षा देते हैं। कहीं वह व्यक्तिगत आनन्द के प्राप्त करने के नियम बताते हैं, कहीं घरेलू और देशीय आनन्द को प्राप्ती के साधन बताते हैं। अतएव हमारे जीवन के प्रत्येक कार्य का मन्तव्य प्रसन्नता और आनन्द ही है। हम जानें तथा न जानें। सतसंग से यदि कोई रहस्य ज्ञाता हो तो प्राणी को सारभेद मिल जाता है। तब इस रहस्य को समझकर प्राणी प्रसन्नता और आनन्द का संस्कार लेकर अपना जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत कर सकता है इसीलिए किसी आनन्दयम पूर्ण पुरुष के सतसङ्ग की आवश्यकता है। जिसकी विचारधारा संसार में फैलती है।

किन्तु कोई प्राणी भी इस कर्ता पुरुष तथा कालचक्र से बाहर नहीं जा सक्ता है। संकल्प चाहे वह हमारा हो अथवा कर्त्ता-पुरुष का समयानुसार विनस जायगा। "जो उपजे सो बिनसै"।

मानव जाति ने इसका अनुभव करने के पश्चात इस कालचक्र से निकलने का प्रयत्न किया केवल मानव ही नहीं वरन समयानुसार यह काल पुरुष तथा सोहं पुरुष स्वयं अपने ही सङ्कल्प से इस कालचक्र को प्रलय में जाने का संकेत करता है।

चूँकि मैंने आनन्द की अवस्थाओं को विशेष अनुभव किया है और अब प्रतीत करता हूं कि आनन्द की अवस्था भी स्थाई नहीं रह सकती और जीव अब ऐसी दशा का अनुभव कर चुका है जहां—

न आनन्द है न मत है न सत है।
वह क्या है क्या कहूं वह ज़ात मेरी हक़ है॥

चूँकि इससे उपराम होगया है इसलिए अब न तो इस गृहस्थ जीवन का कार्य, न साधन और अभ्यास और न प्रेम, भक्ति आदि स्थाई सुख और शांति दे सकते हैं इसलिए मेरा अस्तित्व किसी ऐसी अवस्था को प्राप्त करना चाहता है जहां:—

न सत है न चित नहीं वह आनन्द का स्थान है।
वह है ज़ात अपनी लामकानी वह अपना स्थान है॥
जहाँ न द्वैत अद्वैत का कोई वहाँ नाम निशान है।
वह क्या है क्या कहूं कहने सुनने से परे इक ज़ात महान है॥
वही अकाल है दयाल है अनाम है या और कुछ कहो।
ब्यान उसका मुमकिन नहीं क्योंकि वह लाब्यान है॥

गत दिवस एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि महान पुरुष की एक स्त्री बहुत प्रेमिन और अभ्यासिन थी अधिक जीवन उसने प्रेम भक्ति और साधन में व्यतीत किया था उसकी अन्तिम आयु में यदि कोई उसके सम्मुख महापुरुष तथा किसी भी वयोवृद्ध का नाम लेता तो वह अपने गुरू तथा अन्य महापुरुषों को अपशब्द कहती थी। ऐसा क्यों हुआ।

मैं हंसा। मैंने कहा उसके गुरू ने इसको रहस्य तथा सारभेद नहीं बताया था। केवल उसने प्रेम श्रद्धा और विश्वास के सहारे जीवन व्यतीत किया था। चूँकि वह स्त्री अपने हृदय से सच्ची थी, उसने अनुभव कर लिया कि सारतत्व द्वैत अद्वैत से परे है और चूँकि यह अनुभव उसको अपने निज अनुभव से हुआ इसलिए

उसके मन से वाह्य महान पुरुषों अथवा अपने गुरू से प्रथक होने का विचार उत्पन्न होना अनिवार्य था । यही दशा मेरी हुई। किन्तु दातादयाल ने अपने संस्कार से जो वाणी मुझको सम्बोधित करते हुए लिखी उसमें सतचित आनन्द से परे की अवस्था का उल्लेख था इसलिए अब मुझे इस वाह्य गुरुत्व से घृणा नहीं उत्पन्न हुई वरन् इसके प्रतिकूल कृतज्ञता और धन्यवाद देने की प्रवल इच्छा उत्पन्न हो गई।

कामी तरे क्रोधी तरे पापी तरे अनन्त।
आन उपासक कृतघिन तरे न नाम रटन्त॥

आपने अपने पत्र में जो कुछ मेरे संबंध में लिखा है वह आपकी अपनी ही भावना है। ज्ञान दाता, भेद दाता तो मैं अवश्य हूं परन्तु जो कुछ किसी को मिलता है वह उसके अपने ही कर्म, भाव, श्रद्धा, और विश्वास का परिणाम होता है।

मेरे सतसंग से सच्ची बुद्धि, सच्चा विवेक और संस्कार अवश्य अधिकारी ले जाता है और यदि वह इच्छुक है तो वह उसको वह वस्तु अवश्यमेव मिलनी चाहिये। जिस प्रकार किसी कामी पुरुष को किसी सुन्दर स्त्री के देखने अथवा उसके चित्र के देखने से उसके मन की दशा विचलित हो जाती है उसी प्रकार एक स्वतंत्र, निर्बन्ध पुरुष जो मर्म, भेद ज्ञाता तथा चौथेपद का वासी हो उसके दर्शन से दुखी अशान्त भ्रान्तमय प्राणी को सौख्य शांति, निर्भ्रान्ति की संपदा मिलनी चाहिये।

इस विचार से यदि कोई मेरी प्रशंसा करता है तो दूसरी बात है वरन् मैं स्वयं प्रशंसा का इच्छुक नहीं हूं।

दया कर गये ज्ञाते मुतलक दातादयाल मुझ पर बड़ी।
निकल गया तारीफ़ और बदनामी के झंझट से अभी॥
न खुशी कोई न ग़म कोई न अपना कोई न बेगाना रहा।
छोड़कर मसकन ज़मीन का लामकानी मैं होगया॥

कुछ दिनों का संयोग है और कुछ दिनों का मेल है।
फिर न होंगे हम यहां पर राज़ो सरबस्ता है खुल गया॥

मुझे और भी सज्जनों के पत्र मिले जिनमें प्रत्यक्ष में अथवा गुप्त रूप में यह पूछा गया है कि मेरे पश्चात् यह कार्य कौन करेगा सुनो ! इस त्रिगुण आत्मिक जगत के परे चौथे पद की अवस्था के प्राप्त करने के अधिकारी विशेष विशेष होते हैं। "नानक कोटिन में कोई नारायण जिनचेत"

किन्तु आनन्द और प्रसन्नता का इच्छुक संसार है। इसलिये जब तक शासन में वह विधान जो मानव जीवन को प्रसन्न और आनन्द मय रख सकते हैं न बनेंगे संसार का कल्याण होना असंभव है। जब मानव जीवन इस आनन्द की अवस्था को पूर्णतः अनुभव नहीं कर सक्ता तो इससे आगे चौथे पद तक पहुंचने की इच्छा ही नहीं कर सक्ता है। इसलिये मेरे अनुभव में कोई ऐसा व्यक्तित्व शासन में आकर मानवता के विधान को लाने का प्रयत्न करेगा क्यों कि अब मानव जाति चारों ओर से दुखी होरही है मांग और पूर्ति का विधान काम करेगा।

मेरा कोई डेरा नहीं, धाम नहीं, जो मुझे किसी को सौंपना हो और न कोई वसीहत कर जाना है। यदि संकल्प में कोई शक्ति होती है तो मैं इच्छा करता हूं कि मानव जाति का कल्याण हो यह इच्छा संकल्प किसी व्यक्ति को प्रगट करेगा। क्या पता इससे पूर्व ऐसी परिस्थिती उत्पन्न हो जाय जो मानव जाति को विवश करे कि वह ऐसा न करे। आगे मौज।

तुम आज वर्षों से दातादयाल जी के ग्रन्थों और लेखों का प्रचार मासिक पत्र "दयाल" द्वारा कर रहे हो अपना काम प्रचलित रक्खो, अपने हृदय को शुद्ध पवित्र, निर्मल और निष्काम बनाते चलो। मौज को जो कार्य तुमसे लेना है, लेकर रहेगी। चले चलो, घबराओ मत। नन्दू भाई का सम्मान सच्चे हृदय से होता

रहे। वह दाता दयाल के स्थान पर कार्य करते हैं। मेरे निमित्त जात कल्याण का कार्य था वह मुझसे हो सका कर दिया यदि मानवता का रज्य आगया तो मेरा कार्य टीक वरन् ग़लत।

नोट:—संभव है कि आप तथा अन्य पंथ वाले प्रश्न करें कि मैंने शासन में संतमत की शिक्षा को प्रचलित करने का विचार किस कारण दिया इसका उत्तर यह है कि मेरे जीवन का अनुभव है। यहाँ वाह्य प्रभाव पड़ते हैं और प्रत्येक व्यक्ति का उनसे प्रभावित होना अनिवार्य है। शक्तिशाली मारे और न रोने न दे इन वाह्य प्रभावों के आवेश में आकर प्राणी विवश हो जाता है ऐसा कार्य करने के लिए जिसको उसका अन्तःकरण स्वीकार नहीं करता मैंने समस्त आयु एक पैसा भी घूँस नहीं ली और कार्य निमित्त झूँठ नहीं बोला परन्तु शासन कार्य में पदाधिकारियों को यदि मैं अपने विचार प्रगट करके कोई रुकावट डालता तो मेरा जीवन नष्ट भ्रष्ट हो जाता। घरेलू जीवन में देखा गया है कि गृहस्थी पर उसके सम्बन्धियों जमाता भाई, भतीजे, सन्तान की ओर से विशश हो जाता है कि वह उनके भावों, अनुचित इच्छाओं के प्रभाव में आये। एक व्यक्ति का दूसरे के प्रभाव में आजाना स्वाभाविक है और उसको अनुचित कार्य करने पड़ते हैं।

वास्तव में प्राणी के दुखों का अर्धभाग गृहस्थ और घरेलू जीवन की उलझन है।

अब मेरी बृद्धा अवस्था है और जीविका उपार्जन भी नहीं है इस कारण दूसरों की अपेक्षा अनिवार्य है और इस बृद्धा अवस्था को व्यतीत करने के लिए चतुराई से काम लेना पड़ता है।

तन धर सुखिया कोई न देखा जो देखा सो दुखिया हो" बातें बनाकर कह देना कि प्राणी सुखी है अज्ञान है यह ठीक है किअपने मन को संयम में रखने से प्राणी सुखी हो सक्ता है किन्तु यह स्थाई नहीं है क्योंकि जीवन की आवश्यकतायें विवश करती हैंइन

कारणों से मैं यह मानने के लिए विवश हूं कि जब तक कोई शक्ति प्राणियों को मनुष्यत्व के सिद्धान्तों अथवा धर्म पर लावेगी तब तक मानव जीवन शारीरिक तथा मानसिक रूप से सुखी नहीं रह सक्ता है यह मेरा अनुभव है इसलिए मैंने जगत कल्याण की श्रंखला में मनुष्य बनो की पुकार को उठाया है। यह सब से प्रथम मंत्र है। अपने कर्तव्य, कर्म और धर्म को प्रसन्नता पूर्वक निभाओ, विवशतः नहीं। इस मनुष्यत्व को लाने के लिए जिस शक्ति की आवश्यकता है वह शक्ति किसी का भय है। अब मानव जाति को न मालिक का डर है, न शासन का और न भविष्य का। यदि भय हो सकता है तो शासन का परन्तु वहाँ भी प्रजातंत्र है। अतः मेरे विचार में यदि शासन में मनुष्यत्व आ जाय तो संभव है यथा राजा तथा प्रजा के सिद्धांतानुसार मानव जाति के जीवन की कठिनाइयाँ दूर हो जाँय। जब तक हमारे शारीरिक व मानसिक जीवन का सुधार नहीं हो लेता तब तक आत्मिक जीवन का स्वप्न देखना व्यर्थ है। हाँ एक स्वाँग और ढोंग तो अवश्य है अतः मानव धर्म और शासन को एक किये बिना कोई निर्वाह नहीं है। मैं अपनी सम्मति दे रहा हूँ और प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्मति देने का अधिकार रखता है।

ग़ज़ल पीरेमुग़ाँ साहब

आग भड़की दिल के जज़्बे की, बुझा सकता है कौन।
यह लगाई है उसी की, और लगा सकता है कौन॥
जल रही हैं उस्तख्वाँ, और जल उठे दिल और जिगर।
यह जलन है सख्त, और इसको मिटा सकता है कौन॥
मुशतअल है आग और, उससे उठता है धुआँ।
इस मुसीबत से मेरे, दिल को बचा सकता है कौन॥
अपनी हालत पर नज़र की, फिर उठा दस्ते दुआ।

या इलाही ख़ा ।फ़त को उठा सकता है कौन ॥
ग़ैब से आव ग्राई, दौरे दिल को उठने दे।
वह उठा ऋ ग, इसको दबा सकता है कौन ॥
जब धूआँ । उठा, तब ख़ार से बादल बना।
आँसू बन क उठा, ख़ुद और बहा सकता है कौन ॥
अश्क की ब हुई, तब बुझ गई वह आग आप।
दिल में दि ग्रात को समझो, बता सकता है कौन ॥
दरदेदिल में हुआ पैदा, उसी में थी दवा।
दोनों थे एः , यह नुक्ता सुझा सकता है कौन ॥
छेड़ा था मुर्ग़ाँ" ने, पहिले दीपक राग को।
गाई धुन म ी फिर, इसको गा सकता है कौन ॥

दातादय ऻ सतसंग के अनमोल बचन

प्रश्न— ों किया जाता है ?

उत्तर— मान मर्दन करने के लिए और अहंकार की जड़ काटने ! गुरू किया जाता है। अपना ममत्व जाता रहे और गुरू क त्व आ जाय। अपने लिए कोई कार्य न किया जाय वरः के लिए किया जाय। अपने शरीर का अभिमान न रहे गुरू का अभिमान रहे।

प्रश्न— ।धन से क्या लाभ होगा ?

उत्तर— ो गढ़त होगी। विचार में एकाग्रता आवेगी ध्यान को स्थिि ने का केन्द्र मिलेगा।

प्रश्न— ह बात मूर्ति पूजा से प्राप्त नहीं हो सकती ?

उत्तर— जड़ है, गुरू चेतन है। जड़ से जड़ता आने का भय रहता ह ३न से चेतनता का विचार जागता है। मूर्ती कभी उत्तर नही ।कती, गुरू से प्रत्येक समय उत्तर मिल सकता है।

प्रश्न—गुरू का ध्यान किस प्रकार किया जाय ?

उत्तर—भ्रू मध्य के बीच अपनी सुरत को एकत्रित करो और इस पर गुरू की विचारयुक्त मूर्ती को स्थापित करो। प्रथम में मूर्ती धुंधली दृष्टिगोचर होगी फिर उसमें प्रकाश उत्पन्न होगा। उसमें आकार बनेंगे और थोड़े दिन के साधन से वह मूर्ती प्रकाशवान हो जावेगी।

प्रश्न—गुरू का ध्यान किस समय करना चाहिए ?

उत्तर—प्रारम्भ में प्रातः, दोपहर और संध्या फिर शनैः शनैः प्रतिक्षण, चलते फिरते, खाते पीते, जागते सोते और उठते बैठते।

इस प्रकार कि समता आ जाय। नेत्र बंद हुए कि गुरू मूर्ती सम्मुख आ जाय और स्तुति करते समय मूर्ती उसके सम्मुख विद्यमान रहे।

प्रश्न—क्या यह बात संभव भी है ?

उत्तर—इस विचारशील जगत में प्रत्येक बात संभव है। विचार ही तो है इधर से हटा उधर लगा दिया। समता और स्वभाव का नियम एक ऐसी दशा उत्पन्न कर देगा कि गुरू सदैव अङ्ग संग रहेंगे।

प्रश्न—गुरू के ध्यान के समय पवित्रता और अपवित्रता का विचार रखना ठीक है अथवा नहीं ?

उत्तर—गुरू का विचार प्रतिक्षण रहना चाहिये। गुरू एक प्रकार का इष्ट है जो प्रत्येक समय पवित्र रहता है उसमें अपवित्रता नहीं होती। तुम शौच आदि के समय भी गुरू का ध्यान कर सकते हो। इसके लिए कोई बंधन नहीं है।

आवश्यकीय सूचना

(१) जिन सज्जनों ने दातादयाल की समाधि के लिए जो

राशि भेज कर हमारी सहायता की है हम उनके हृदय से कृतज्ञ हैं। दाता उनकी मनोकामना पूर्ण करे और वह लोक और परलोक में यश के भागी बनेंगे। सतगुरु सबका कल्याण करेंगे।

१—सेठ बुरगोमहादेव जनरल मरचेन्ट जनरल बाजार सिकन्दराबाद दकन ५००)।

२—सेठ बाबूराम गुप्त होज़री मरचेन्ट उर्दू बाजार गोरखपुर यू० पी० ३०१)।

३—सेठानी दुलारीबाई कोदूसिंह बड़ी बहिन पूलाबाई आनन्द नगर इटारसी १०७)।

४—परम दयाल फ़क़ीर साहब जी महाराज के किसी मित्र के २०)।

(२) यदि आपको सन्तों के चित्रों की आवश्यकता हो तो प्रेमी भाई श्यामराव ८३४ नन्दू कुटिया नाम पल्ली लाल टीकरी हैदराबाद दकन के यहाँ से मंगा सकते हैं।

(३) यदि आप हिन्दी मासिक "शिव" का अध्ययन करना चाहें तो ६) उसका वार्षिक मूल्य मैनेजर शिव साहित्य प्रकाशन मंडल पोस्ट दयाल नगर जि० अलीगढ़ यू० पी० के नाम भेज कर लाभ उठा सकते हैं। अत्यन्त अदभुत और अनुपम मासिक पत्र है। ६) की तो पुस्तकें ही वर्ष के अन्तर्गत मिल जाती हैं।

(४) इसी प्रकार का उर्दू मासिक पत्र 'दयाल' है। यदि उर्दू में रुचि हो तो ६) भेजकर मैनेजर दयाल साहित्य प्रकाशन मंडल केशवगिर हैदराबाद दकन से मंगाकर लाभ उठा सकते हैं। आम के आम गुठलियों के दाम। ६) की तो आपको पुस्तकें ही मिल जाँयगी।

(५) यदि आप विद्या प्रेमी हैं तो १००) भेजकर आजीवन सदस्य बन जाइए। प्रेमी भाई आनन्द दयाल जी २५/३२ पुराना राजेन्द्र नगर नई देहली मन्त्री परम दयाल फ़क़ीर पुस्तकालय आपको

सदस्य बनायेंगे और दातादयाल की पुस्तकें अध्ययन करने को देंगे। लगभग ५०० पुस्तकें एकत्रित हो चुकी हैं। महर्षि जी महाराज की पुरानी पुस्तकें भेज कर भी सहायता दे सकते हैं। प्रेमी हो तो दो तभी तो कुछ मिलेगा।

(६) बात जो असली है, मतवाले समझते ही नहीं।
मति को मति समझे हैं जो, मति सच्ची रखते ही नहीं॥
अपनी मति वाले बनें, मतवाला पन तब दूर हो।
मति के झगड़े मेंटकर, सतमति की कहते ही नहीं॥

(७) नेक आदमी किसी से यह नहीं कहता रहता कि मैं नेक हूँ। बल्कि नेकी की धार उसके जीवन से प्रत्येक समय बिना किसी को जताये हुए निकलती रहती है। और प्राणी उसके समागम में कुछ के कुछ बनने लगते हैं।

कर्म भोग अथवा मौज—राधास्वामी मत तथा संतमत

(ले० परमदयाल फ़क़ीर साहब)

तमब्बुजे हस्ती ने बनाया फ़क़ीर, करता हूँ अपना कर्म।
खोल करके कह रहा हूँ, राज़ कुदरत का मर्म॥

राधास्वामी मत के वर्तमान कुछ आचार्यों के स्वार्थिक व्यवहार और अज्ञान के कारण कुछ सतसंगी जिन्होंने इस राधास्वामी मत में आकर अपनी धन सम्पत्ती और मान प्रतिष्ठा अपने सतगुरुओं के अर्पण की किन्तु उस वास्तविकता से बंचित रहे जो उनको पूर्व में बताई गई थी। मेरे पास आकर राधास्वामी मत के प्रतिकूल अवहेलना करने लगे। मैं हँसा और कहा कि आप मेरा सतसंग सुनें जो प्रत्येक मास में प्रथम रविवार को होता है। वह प्राणी सत्संग में आये। उस दिन निम्न लिखित शब्द सार वचन पोथी में निकला।

(माया सम्बाद वचन चौवीसवां)

चढ़ौरी सखी अब अगम अटारी। खोल दई मेरे हिये की पिटारी॥
हाथ लई मैंने विरह कटारी। काल दुष्ट का सीस कटारी॥

मैंने अपने निज अनुभव के आधार पर इस शब्द की व्याख्या की जो वास्तव में संतमत का सार है। समस्त प्राणी चकित हो गये। उन सबों ने शीश नवाकर स्वीकार किया कि वास्तव में संतमत का सिद्धांत हमको बतलाया ही नहीं गया। हम इस कारण उदास होकर अशान्त रहते थे।

आज विचार हुआ कि जो कुछ मैंने सतसंग में कर्म भोग अथवा मौज आधीन वर्णन किया था उसको संक्षेप में लेखनी वृद्ध कर दूँ जिससे कि जन साधारण को जो वर्षों से इस पंथ में आये हुये हैं शान्ती मिले। मैं चाहता हूँ कि वर्तमान महात्मा जो राधास्वामी मत की तथा संतमत की शिक्षा देने के आचार्य हैं यदि मेरी त्रुटि समझें तो प्रसन्नता पूर्वक मेरी वाणी का संशोधन कर सकते हैं। जिससे जन साधारण पथ भ्रष्ट न होने पावें। मुझे किसी बात का दावा नहीं है। मेरा समस्त जीवन वास्तविकता की खोज में व्यतीत हुआ है। जो अनुभव किया है स्पष्ट रूप में वर्णन करता हूँ। यदि मुझे सन्तमत में कोई त्रुटि दृष्टिगोचर होती तो मैं निर्भय होकर इसका खंडन स्पष्ट रूप में अवश्य कर जाता। इस लेख में मैंने उपरोक्त शब्द की चार कड़ियों के मन्तव्य को अपनी समझ के अनुसार निम्नरूप में स्पष्ट किया है।

१—प्रथम राधास्वामी मत, कबीर मत तथा सन्तमत केवल अधिकारियों के लिये है। अधिकारी कौन है? जो इस संसार से उपराम प्राप्त कर चुका है। स्वामी जी महाराज की वाणी है।

विषयों से जो रहे उदासा। परमारथ की जा मन आसा ॥
धन सन्तान प्रीति नहीं जाके। खोजत फिरे साधु गुरु जागे ॥ आदि

चूँकि वर्तमान महात्मा स्वयं अधिकारी नहीं हैं वह किस प्रकार यह शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं तथा दूसरों को दे सकते हैं। यह समस्त कार्य इस समय व्यवहारिक दृष्टि से सत्सङ्गों में होता रहता है। स्वामी जी महाराज वर्णन करते हैं।

गुरु चेला व्यवहार जगत में झूँठा बरत रहा।
गुरु तो मान प्रतिष्ठा चाहें। चेला स्वारथ सङ्ग बँधा ॥

सुनो मित्रो! सन्तमत के निर्विती मार्ग की शिक्षा उस समय आरम्भ होती है जब प्राणी के मन की पिटारी खुल जाती है। पिटारी एक टोकरी होती है जिसमें प्राणी वस्तुयें रखते हैं। हिये की पिटारी क्या है? यह प्राणी का मन है जिसमें नाना प्रकार की वासनायें, आशायें और इच्छायें भरी पड़ी हैं। जब तक किसी प्राणी को अपने मन का ज्ञान नहीं हो जाता कोई भी प्राणी यह अगम वस्तु जिसको पाकर प्रत्येक प्राणी इस मन के चक्र में नहीं आता प्राप्त नहीं कर सकता और आवागमन से मुक्त नहीं हो सकता।

द्वितीयः—संसार से उदासीनता बहुधा वैराग्य के कारण से भी उत्पन्न हो जाती है किन्तु वास्तविक वैराग्य इस मन के रूप को समझ लेने से ही होता है और यह समझ केवल अधिकारी वाह्य पूर्ण पुरुष जो स्वयं अगम देश का वासी हो के सतसंग से प्राप्त हो सक्ती है। इसके पश्चात् फिर वह अपनी सुरत को अगमधाम, निजस्वरूप तथा सार अनुभव की दशा में ले जा सकता है। प्राणी लाख प्रयत्न करे वह किसी दशा में भी बिना मन के रूप समझे हुये तथा जाने हुये सतपद, अलख तथा अगम अवस्था तक नहीं पहुँच सकता। स्वामी जी महाराज ने स्पष्ट वर्णन किया है।

चढ़ौरी सखी अब अगम अटारी। खोल दई मेरे हिये की पिटारी ॥

समस्त सतसंगी विशेष विशेष के अतिरिक्त सब मन की तरंगों में अर्थात् मन के खेलों में सम्पूर्ण जीवन फँसे रहते हैं और छुटकारा नहीं पाते हैं और बराबर धोखा खा रहे हैं। मेरे पास इतना समय नहीं है कि जो विस्तार पूर्वक वर्णन कर सकूँ। मेरे विचार मनुष्य बनो पत्रिका में प्रकाशित होते रहते हैं उनका अध्ययन करो। मैंने साहस करके अपना निज अनुभव अति स्पष्टता से वर्णन किया है।

आज के इस सतसंग में एक स्त्री और पुरुष विद्यमान हैं। इन दोनों ने किसी गुरू से दीक्षा ली है। इनको भ्रम है कि इनके घर में किसी ने जादू किया हुआ है। इसलिए स्त्री सदैव रोगग्रस्त रहती है। पुरुष ने अनेक बार मुझसे इस सम्बन्ध में वार्तालाप किया है। वह सम्पूर्ण बात अपनी स्त्री को सुनाया करता था कुछ दिवस हुए उस स्त्री के मन में अभ्यास के समय मेरा रूप प्रगट हुआ। उसको विश्वास होगया। चूँकि उसने मुझको देखा नहीं था मेरा रूप जो उसने अभ्यास में देखा था अपने पति को बताया वह बिलकुल ठीक निकला। उस स्त्री ने अपने पति से कहा कि मेरे लिए बाबाजी से परशाद लेते आना जिससे कि मेरा यह शारीरिक रोग दूर हो जाय। उसके पति ने मुझको विवश किया। मैंने दाता का नाम लेकर परशाद कर दिया। सायंकाल में परशाद खाने के पश्चात् वह स्त्री कहती है कि उसके मन में उसका पहला गुरू और मैं (फ़क़ीरचन्द) दोनों प्रगट हुए। उसका गुरू मेरे साथ झगड़ा कर रहा है कि यह मेरी शिष्या है तुमने इसको क्यों परशाद दिया। मेरा रूप कहता था भाई! चूँकि इसने आरत होकर प्रार्थना की थी इसलिए मैंने परशाद कर दिया। अब तुम इससे कहो कि वह परशाद न खाये।

संसार वालो! मैं नितान्त इस घटना से अनभिज्ञ हूँ।

यह क्या है ? यह है मन का खेल। मन की पिटारी में भिन्न २ प्रकार के भ्रम, शंकायें और संदेह भरे पड़े हैं। जब तक इस प्रकार की शंकायें, भ्रम और संदेह प्राणी के मन से नहीं निकल जाते कोई किस प्रकार आशा कर सकता है कि वह इस काल माया के चक्र से निकल जावेगा। सोचो, समझो और ध्यान करो ! यह वर्तमान महात्मा गुरू जन क्या करते हैं ? मान प्रतिष्ठा की इच्छा के अन्तरगत जन साधारण को अपने चक्र से मुक्त नहीं होने देते हैं और जीव स्वार्थ वश इससे मुक्त भी नहीं होना चाहते।

इसलिये सन्तों की शिक्षा के अधिकारी यह व्यक्ति कहाँ हैं। सतसंगियों तथा जीवों को यह ज्ञान नहीं है कि प्राणी के मन की पिटारी में क्या भरा हुआ है। और न वह मन के खेलों के परिणाम का ज्ञान रखते हैं। इसलिए कोई भी बिना किसी पूर्ण पुरुष की दया और सतसंग के इस महाचक्र से मुक्त नहीं हो सकता।

सन्तों ने जीवों की यह दशा देखकर सतसंग का क्रम प्रचलित किया है और स्पष्ट रूप से कह दिया है कि सहस दल कंवल से लेकर भँवर गुफा तक जितनी सोपानें हैं यह सबकी सब काल और माया के अन्तरगत हैं। हमारा लक्ष्य सतपद है। जीवों को मन के खेलों का पूर्णतया अनुभव कराने के लिए सुमिरन ध्यान आदि बताया जाता है और साथ ही किसी रहस्यज्ञाता सतपुरुष के सतसंग करने के लिए आदेश दिया जाता है। जब तक पूरा सतगुरु नहीं मिलता यह संभव नहीं है कि कोई प्राणी अपनी सुरत को इस काल और माया से निकाल सके। इसलिए स्वामी जी महाराज ने स्पष्ट आदेश किया है।

'सतगुरु खोजरी जगत में दुर्लभ रतन यही।'
पूरा सतगुरु ढूँढ़ तेरे भले की कहूँ ॥'

थोड़े से साधन और पूर्ण पुरुष की संगत से इस मन की पिटारी खुल जाती है तथा सतगुरू अपने वाह्य वचन से इस पिटारी को खोल देते हैं तब आगे का मार्ग खुलता है क्योंकि वास्तविक नाम चौथे पद में है।

"नाम रहै चौथे पद मांही यह ढूँढ़ै त्रिलोकी मांही।"

अब प्रश्न यह है कि काल क्या है? यह समस्त रचना त्रिलोकी कहलाती है इसका बनाने वाला अथवा संग्रहित रूप का नाम कर्ता पुरुष है। इसका शरीर विराट है, मन अव्याकृत है, आत्मा हिरण्यगर्भ है। मैंने सितम्बर मास के मनुष्य बनो पत्रिका में एक लेख दिया था कि इस भूमण्डल में सर्व प्रथम मनुष्य उत्पन्न हुआ, कब हुआ कहां हुआ और उसका कर्तव्य क्या है। उसका अध्ययन करो और मनन करो। मेरे पास इतना समय नहीं है कि मैं बारम्बार वर्णन करूँ। उस आदि मनु के संकल्प से यह रचना आरम्भ हुई है और हम सब पूर्वजों से संकल्प शक्ति के अन्तरगत तथा वासना के अन्तरगत कर्म करते आरहे हैं। जो गुण उस कर्ता पुरुष में है वह सब हममें भी विद्यमान हैं।

चूँकि कर्ता पुरुष ने अपनी वासना से सृष्टी रची अब वही वासना प्रत्येक जीव जन्तू में विद्यमान है। तुम नहीं देखते हम इस संसार में सुख दुख भोगते रहते हैं। दुखी भी हैं और प्रतिदिन आपत्तियाँ, सङ्कट क्लेश भोगते रहते हैं और यह जानते भी हैं कि यहाँ दुख है, मृत्यु है, उत्पत्ती है इस पर भी सन्तीन पर सन्तान उत्पन्न करते रहते हैं। इस जीवन में इन्हें दुख का बोधभान भी है फिर भी खेद है कि हम और सन्तान उत्पन्न करके उनको भी दुखी करते हैं। हम सब ऐसे ही हैं। इसी प्रकार भी यह कर्ता पुरुष भी निर्दयी, कठोर और दुष्ट हैं जो उत्पत्ति के चारखान को उत्पन्न करता रहता है। जब

अनुभव भवंर गुफ़ा के स्थान पर साधन करने से होते हैं किन्तु हैं यह समस्त काल और माया के अन्तरगत। इसी विचार से स्वामी जी महाराज ने वर्णन किया है।

"योगी ज्ञानी भक्त उपासक इन सब चक्कर खाया।"

पाठको सुनो! संसार में परमार्थ की किसी को इच्छा नहीं है। समस्त संसार इस मन की आकांक्षाओं को पूर्ण करने में संलग्न है। सांसारिक इच्छायें, मानसिक प्रसन्नतायें और आत्मिक आनन्द जो चाहते हैं उनके लिए सुमिरन, ध्यान आदि बताया जाता है तथा अन्य उपाय बताये जाते हैं। यह समस्त अस्थाई अवस्था हैं। इसीलिए प्रकृति मानव जीवन को सुख दुख के चक्र में रखती है।

काल रचा हम समझ बूझ के। बिना काल नहीं होश जीव के॥

चूँकि इस समय धर्म और पंथों के भीतर वह बात नहीं रही है जो सन्तों की वाणी में विद्यमान है। इसलिए जनसाधारण को जो वास्तविक और सत्य शान्ति तथा अनुभव के इच्छुक हैं उनमें उदासीनता का आना अनिवार्य है। पंथ के सिद्धान्त के अनुसार जन साधारण के लाखों रुपये व्यय हो गये। भेंट और चढ़ावे दिये गये। चूँकि इच्छित वस्तु नहीं मिली इस कारण उनकी शिकायत उचित है और यह स्वाभाविक वस्तु है।

मैंने भी यह सब कुछ किया है किन्तु दातादयाल की पवित्र पुनीति विभूति ने मेरे अज्ञान को संभाला। एक समय पन्द्रह सहस्र रुपया परशाद में गुप्त रूप से लाहौर में मेरी स्त्री को लौटाया गया था जिसका ज्ञान मुझे निवास स्थान पर पहुँचने पर हुआ जबकि मेरी पत्नी ने उस परशाद को खोला। दूसरे समय दातादयाल ने मेरा रुपया पंजाब नेशनल बैंक में जमा कर दिया था। सन् १९२१ में वह पास बुक मुझको नन्दू भाई से दिलवाई। तीसरे समय लगभग बीस सहस्र रुपया दातादयाल ने सुनाम स्टेशन पर मेरी

धर्मपत्नी को लौटाया था और मुझसे कहा था कि ऐ अज्ञानी अपनी जीविका स्वयं कमाओ यह धन राशि मैंने ले ली इसमें तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है इस आज्ञा का पालन मैं अब तक कर रहा हूं इन सत संगियों को जिन्होंने मुझसे राधास्वामी मत और गुरुत्व विरुद्ध कहा है उनकी दशा को सुनकर मुझे खेद इस कारण हुआ कि उनकी धन सम्पति भी लुट गई और उनको प्राप्त भी कुछ नहीं हुआ यह जो कुछ हुआ अच्छा ही हुआ। अब वह इस भेद को पाकर प्रसन्न हैं। आज ही आये थे प्रेम मग्न होकर अश्रु धारा बहा रहे थे। मैंने कहा कि तुमने धन श्रद्धा से दिया था तुमको उसका फल मिल गया अब ग्रहण करने वाले को इसका परिणाम भोगना होगा। धन्य है वह शिष्य जो गुरु सेवा किया करते हैं और डूबे हुए हैं वह महात्माजन जिन्होंने गुरुत्व को जीविका उपार्जन का उपाय बना रक्खा है। शिष्यों को उसका फल अवश्य मिलेगा परन्तु गुरुओं को उसका परिणाम भोगना पड़ेगा।

सतसंगियो सुनो! मैं तो किसी को कुछ दे नहीं सक्ता। हां तुम निःसन्देह ले सक्ते हो। सतसंग से मेरी विचार धारा रेडियो के नियमानुसार तुम पर प्रभावित होगी। मेरा ध्येय डेरा, धाम मंदिर, सामाजिक व्यवहार का नहीं है। यद्यपि इस कार्य की भी अत्यन्त आवश्यकता है किन्तु मेरा कार्य केवल दुखी और अशान्त जीवों और जगत कल्याण के निमित्त है।

प्रत्येक प्राणी विशेष विशेष कार्य के लिए प्रकृति माता ने उत्पन्न किया हुआ है।

यदि मेरा सतसङ्ग करने वाले तथा मेरे लेखों का अध्ययन करने वाले भ्रम, संशय, संदेह और भय से मुक्त नहीं होते हैं तो मैं अपने में कमी प्रतीत करता हूँ। यदि मेरे विचार संसार में फैलकर मानवता का राज्य कुछ वर्षों में न लायेंगे तो मैं समझ

लूंगा कि मेरा कार्य त्रुटि पर था किन्तु मुझे इसका कोई खेद नहीं होगा क्योंकि मैंने किसी से कुछ लिया नहीं है।

यद्यपि सेठ दुर्गादास ने २०) मासिक की सहायता आज गत छः वर्ष से की है। वह भी मैंने अपनी पुत्री हेतु जिसको उसके पती ने छोड़ दिया है क्यों कि वह कुछ पागल है। इसके अतिरिक्त वह मेरा मित्र भी है और वर्षों से मेरे मिलने वालों में से है। अब मैं सुखी हूँ। जीवन का लक्ष्य प्राप्त होगया और ऐसी अवस्था का अनुभव होगया है। वह क्या अवस्था है। सुनो!

अजर अमर अपना देश है, जहाँ पर कोई कोई जाय।
काल माया को त्याग कर, तब कोई वह पद पाय॥
पहले खुलै पिटारी मन की, तब कोई आगे जाय।
इससे पहले लाख यतन करो, कोई भी फल न पाय॥
शब्द प्रकाश रहे नित जगमग, वहाँ पर सदा आनन्द।
रोग सोग व्यापै नहीं किंचित, पूरन परमानन्द॥
बाद त्याग शरीर क्या होगा, यह अनुमान, अनुमान।
अपने इस जीवन का अनुभव, मेरा है परमान॥
दातादयाल ने दया करी है, अब पाया विश्राम।
कर्म भोग वश कह दिया मैंने, जीवन का अंजाम॥
कुछ दिन का संजोग है भाई, कुछ दिनों मेल मिलाप।
फिर दायमी वासा मिलेगा मुझको,जहां नहीं काल कर्मकी छाप
राधास्वामी सतगुरु मेरे, लिया चरनों में लगाय।
भूल भरम से है छुटकारा, आनन्द जीवन पाय॥

हे सन्तमत अथवा राधास्वामी मत के उदासीन मित्रो! आओ, सतसंग में आओ:

आओ आओ मेरे सतसंग में, दूँ मैं तुमको राज बताय।
भूल भरम मेंटूँ मैं सारा, पहुँचादूँ दरबार में शाह॥
उसका रूप प्रकाश है भाई, अनहद उसकी वाणी है।

वही बना आधार जगत का, फिर भी वह निर्वानी है ।।
यह है काल माया का देश, रचना रची करतार यहाँ ।
दुख सुख में भुगताऊं गुरू बन, गुरुदेव ने की है सँभाल यहां।।
सुखी रहो निज रूप में अपने, मन में समता धार सदा ।
तन थिर मन थिर बचन रहे थिर, सुरत निरतमें हो थिरता।।
राधास्वामी देंगे सहारा दुख सङ्कट मिट जायेंगे ।
आप आपका भेद मिलै जब नहीं फिर जगमें आयेंगे ।।

ज्ञान की बातें

(ले० दातादयाल महऋषि जी महाराज)

दो मित्र एक स्थान पर बैठे हुये थे सर्दी का दिन था उनको अग्नि की आवश्यकता हुई । एक ने कहा अग्नि होती तो सर्दी से मुक्ती मिल जाती दूसरे ने कहा वाह्य अग्नि चाहते हो कि आन्तरिक । उसने पूछा वाह्य और आन्तरिक अग्नि कैसी होती है ? उसने उत्तर दिया कि वाह्य अग्नि तो यह है जो लकड़ी और बांस के जलने और मथने से अर्थात् चकमक पर चोट लगाने से उत्पन्न होती है और आन्तरिक अग्नि वह है जो हृदय की भट्टी में भड़कती रहती है। यह दो प्रकार की होती है। एक तो उसी को जलाती रहती है जिसके हृदय में उत्पन्न होती है दूसरी उससे अच्छी होती है जो औरों की हार्दिक बुराइयों को भस्म कर देती है और दोनों को शान्त बनाती है। उसने कहा कि मुझको आन्तरिक अग्नि दिखलाओ दोनों मित्र उसी समय चल खड़े हुये निकट ही एक साधू की झोंपड़ी थी । वह वहां पहुंचे और कहने लगे बाबाजी थोड़ी सी अग्नि दो ।

साधू बोला चल, परे हट । यहाँ अग्नि का क्या काम है । वह बोले बाबजी सर्दी से बहुत दुखी हैं दया कीजिये केवल एक चिनगारी दे दीजिये । साधू बिगड़ा और कहने लगा, नहीं सुनता जा । यहाँ

अग्नि नहीं है ! एक मित्र ने कहा बाबा धुआँ हो रहा है, झूँठ न कहो। साधू क्रोधित हुआ और दो चार बुरी भली सुनाई। इस पर वह बोला अब अग्नि भड़क रही है। साधू ने कुछ सोच विचार न किया और अपना चिमटा मारने को उठाया। दोनों भागे और कहने लगे देखो अग्नि प्रचंड हो गई। इसकी लौ आकाश तक पहुँच रही है। यह क्रोध की अग्नि है। इसके पश्चात् दोनों और साधू के पास गये और वही प्रश्न किया। साधू ने नर्मी से उत्तर दिया परन्तु इन्होंने जान बूझकर अप शब्द कहे। साधू अनुभवी था, समझ गया, संतोश के साथ हँसकर बोला हाँ ! मेरे पास अग्नि है, आओ, तुम बैठो, तनिक शाँति के साथ मेरी बातों को सुनो, तुमको वह अग्नि मिल जावेगी। यह बैठ गये। साधू ने समयानुसार वार्तालाप करना आरम्भ किया।

पुत्रो ! तुम बाह्य अग्नि के पीछे न पड़ो, ऐसी खोज करो जिससे सौख्य का जीवन तुमको प्राप्त हो। ऋषि मुनी इस अग्नि की प्रसंशा करते हैं। ऋग् वेद की रिचाओं में इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। यह वह अग्नि है जो सबका कल्याण करती है, यही सबकी उन्नति का कारण है। और इसका नाम भक्ति है। यह समस्त बुराइयों को भस्म करने वाली और अपवित्र को पवित्र करने वाली है तुम इससे संबन्ध उत्पन्न करो। काल और कर्म की सर्दी से तुमको मुक्ति मिल जायगी। दोनों उसकी बातों को सुनकर प्रसन्न हो गये और सतसंग में आने जाने लगे।

बड़ों का विनोद और हास्य

(१) सुभाष बाबू के सभापतित्व में कलकत्ते में कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था। काँग्रेस का एक वर्ग सुभाष बाबू का तीव्र विरोधी था। उसी वर्ग के किसी अनुयायी ने सुभाष बाबू पर एक जूता फेंका।

'किसी भाई ने यह जूता फेंका है' सुभाष बाबू ने जूता हाथ में उठाकर हँसते हुए कहा—'यह मेरे पैर में बिल्कुल ठीक आया है। कृपा करके वह भाई दूसरा जूता और फेंक दें, जिससे कि जूते का यह जोड़ा मेरे प्रयोग में आ सके। वाह रे सुभाष बाबू! क्या तू भी सन्त था?

गाली आवत एक है, उलटत होय अनेक।
कहें कबीर ना उलटिये, वही एक की एक॥

(२) अनूपशहर के एक नाई की स्वामी दयानन्द जी के प्रति बड़ी भक्ति थी। वह एक बार उनके लिए न्हा धोकर ४ रोटी भोजन के लिए ले आया। स्वामी जी भोजन करने लगे।

'महाराज! आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं?' एक पास बैठे हुए पण्डा ने कहा है। आप नाई की रोटी खा रहे हैं?'

'नाई की?' स्वामी जी ने हँसते हुए कहा—'नाई की कहाँ, यह तो गेहूँ की रोटी है भाई!'

शूद्र के छूने से कहीं, होती खरी खोटी नहीं।
गेहूँ की रोटी हैं यह, नाई की रोटी नहीं॥

(3) Ram Lal : Hullo Chaman Lal, Ram Lal, speaking. I am stranded here at Calcutta. Please send me one hundred immediately. I shall return it with the old loan.

Chaman Lal : I am sorry. I don't hear you.

Ram Lal : (Very loudly) I am asking you to send me one hundred.

Chaman Lal : Can't hear you at all.

Operator (cutting in) : I am able to hear it very clearly. Why Can't you ?

Chaman Lal : If you have heard him, you better send him a hundred.

विश्व प्रेमी के नाम शब्द दयाल नन्दू भाईजी महाराज

वक्त मिला है तुमको भाई, जीवन अपना बनाने को।
न रोने गाने के लिए, दुख संकट पछताने को॥
कर्म करो निष्काम कर्म कर, मन से दुबिधा छोड़ दे तू।
प्रेम प्रीति का जीवन गुज़रे, दिल देने दिल पाने को॥
मन इन्द्रियों को बसमें रखकर, भला किया कर जगत का तू।
सब से प्रेम निभाते रहना, चलने और चलाने को॥
शारीरिक और मानसिक दुख को, मेंट तू दे गुरु नाम से अब।
ध्यान धारना मन में रखले, पूरन पुरुष बन जाने को॥
राधास्वामी तेरे सहाई, उनकी शरण तू ले जल्दी।
परमदयाल फ़क़ीर हैं पूरन, दर्शन करने कराने को॥

बेदिल हुए तो दिल का तमाशा दिखा दिया।
जब अहल दिल हैं, वहम को दिल से हटा दिया॥
मरते रहे अजल के तस्सवुर में बार बार।
ज़िन्दा हुए तो नामे अजल को मिटा दिया॥

ग़ज़ल दातादयाल (१)

दरिया में अगर वह है, तो क़तरों में वही है।
ख़ुरशीद दरख़शाँ म है, ज़रों में वही है॥
ख़ाली नहीं जलवा से कोई, उसके कहीं है।
वह जलवा बर अफ़रोज, फ़लक और ज़मीं है॥
जुज़ में वही कुल में है, जुज़ आप वह कुल है।
गुलशन में है अश्जारो समर, आप वह गुल है॥
क्या कहते हो कहने में निहाँ, बात है उसकी।
क्या सुनते हो सुनने में, करामात है उसकी॥
मुख़फ़ी है तहों में तो वही, सब में अयाँ है।
हरजा है कहूँ कैसे यहाँ है, वह वहाँ है॥

(२)

जीते जी पहिने कफ़न जब तेरे दर तक पहुँचे।
तब मिली हम को ख़बर आज कि घर तक पहुँचे॥
किसने मारा हमें हम आप हैं अपने क़ातिल।
तेग़ सूंती है कि जो ठीक जिगर तक पहुँचे॥

ग़ज़ल दातादयाल (२)

जो है वह हम भी वही हैं, हम हैं जुज़ वह कुल सही।
फ़र्क़ क्या है? नख़्ल और गुलशन है वह, हम गुल सही॥
उससे हैं उसके हैं, उसमें हैं, उसी से हैं गुथे।
हम हुए छोटी सदा, वह असले शीरोग़ुल सही॥
देखो कुछ तुम देखने वालो, मींचो आँख को।
हम में मस्ती थोड़ी है, माना वह मय और मुल सही॥
हम हैं वह, वह हम हैं, हम और वह फ़क़त यक वहम हैं।
संगरेज़ा हम हैं, बहरे दहर का वह पुल सही॥
ग़ोर करना बढ़ना, हम दोनों में यकसां देख लो।
वह हुआ उमउल समद, हम बाग़ के बुलबुल सही॥

आज़ादी से अच्छी नहीं दुनियाँ में कोई शै।
आज़ादी नहीं जीने का फिर लुत्फ़ क्या है॥
जागीर की ख्वाहिश है न आबादी की ख्वाहिश।
मर्दों को तो बस रहती है आज़ादी की ख्वाहिश॥

ग़ज़ल पीरे मुग़ां साहब।

सीना शक़ किसका नहीं, किसका जिगर चाक नहीं।
कौन इस दारे महन में है, जो ग़मनाक नहीं॥
जो झुका पाया बुलन्द, उसका हुआ दुनियाँ में।

नक्ल दिखलादो कि जड़, जिसकी तहे ख़ाक नहीं ॥
पाक है, पाकों का माबूद, कहा जाता है।
कोई उस तक नहीं पहुँचा, कभी जो पाक नहीं ॥
अफ़ू कर अपने गुनाहों को, जो तू है ग़फ़्फ़ार।
धोबी क्या धोयेगा वह कपड़े, जो नापाक नहीं ॥
हज़रते इश्क़ ने दिल को किया, बे ख़ौफ़ो ख़तर।
उसके कूचे में न जायेगा, जो बेबाक नहीं ॥
आतिशे ग़म से मेरा, दिल न जलेगा हरगिज़।
वरना हेज़म है न लकड़ी है, खसो खाशाक नहीं ॥

आदमी वह है जो दिन रात करे काम पै काम।
काम जो करता है मिलता है उसी को आराम ॥

ग़ज़ल दातादयाल (१)

हद से जब महदूद हैं, महदूदियत की शान है।
हद से जब आगे बढ़े, हद का कहाँ इम्कान है ॥
हद से बेहद हो गये, बेहद से जब आगे बढ़े।
ज्ञात है वह ज्ञात है वह, ज्ञात की भी ज्ञान है ॥
हक़ है हम में, हक़ हैं हम, हक़ ही को थी हक़ की तलाश।
जब हक़ीक़त मिल गई, अब इल्म क्या क्या ज्ञान है ॥
मारफ़त के राज़ की, आरिफ़ को रहती है ख़बर।
वह नहीं समझेगा, जो कौदन है और नादान है ॥
सुन लिया वेदान्त को, पाया हक़ीक़त का पता।
उसमें ज्ञान अनुमान का, परमान का सामान है ॥

ग़ज़ल दातादयाल (२)

तस्सव्वुर करते करते, गुरु की सूरत आ गई दिल में।
खुदी जाती रही, बेखुद की ख़लत आगई दिल में ॥

जो कसरत का तस्सवुर था, थी दिल में सख्त बेचैनी।
जो वहदत का ख्याल आया, तो वहदत आगई दिल में॥

यह दिल था मख़ज़ाने उम्मीद, खुशियों का इदारा था।
कहूँ क्या खोल कर अब आप, रहमत आ गई दिल में॥

रियाज़त में मैं राज़ी था, इबादत में बना आबिद।
रियाज़त और इबादत की, जो आदत आगई दिल में॥

यह दिल ज़िद्दी था, और ज़िद्द न ही का, सब नज़ारा था।
नहीं ज़िद अब रही दिल में, खुशी अब छा गई दिल में॥

(१) ग़ज़ल राज़ साहब इगलासी

तू मकीं भी है, लामकाँ भी है। बनिशाँ भी है बेनिशाँ भी है॥
तू कहीं बहरे बेकराँ भी है। नूर से अपने दरख़शाँ भी है॥
दिल सितां भी है महरबाँ भी है। रुह परवर है जाने जाँ भी है॥
तू यहाँ भी है और वहाँ भी है। बहुत ही खूब है जहाँ भी है॥
चाहिये तेरे देखने को नज़र। तू निहाँ भी है अयां भी है॥
तेरी नज़रे करम का क्या कहना। महरबाँ भी है पासबाँ भी है॥
तुझसे होती हैं "राज़" की बातें। हमनशीं भी है राज़दाँ भी है॥

(२) ग़ज़ल

सराये फ़ानी है सारी दुनियाँ, यहाँ किसी का घर नहीं है।
नहीं है कोई जहाँ में ऐसा, कि जिसको करना सफ़र नहीं है॥
अनोखा सब से ही वह जहाँ है, जहाँ ज़मीं है न आस्माँ है।
नहीं हैं सूरज व चाँद तारे, नमूदे शामो सहर नहीं है॥
भरे हैं अमृत से सब सरोबर, फ़िज़ा वहाँ की है रूहे परवर।
जड़े हैं अन्मोल वह जवाहर, कि जमती जिन पर नज़र नहीं है॥

अजीब हैरत है ख़ामुशी है, कि दौर जिसमें है बे खुदी का।
हयात लाई है अब यहाँ पर, जहाँ कुछ अपनी ख़बर नहीं है॥
है अपना दुनियां से देश न्यारा, जहाँ है प्रकाश का पसारा।
नहीं जहाँ पर गुरु व चेला, वहां किसी का गुज़र नहीं है॥
नहीं है अहसास दुख सुखों का, न खौफ़ ही कर्म काल का है।
गुरु है जब "राज़"साथ अपने,तो फिर किसी का भी डर नहीं है॥

—=—

ग़ज़ल

गुरु मेरी आँखों के तारे। प्राणों से भी हैं अति प्यारे॥
चित न धरो गुरु दोष हमारे। आन पड़े हैं द्वार तुम्हारे।
जगमग ज्योति जलाते घट में। मन मन्दिर के हैं उजियारे॥
भेद भाव राखें नहीं अन्तर। हम गुरु के हैं गुरु हमारे॥
जन्म जन्म के फन्द छुड़ाये। दीन जनों के हैं रखवारे॥
राखें लाज सदाँ भक्तों की। बिगड़े सारे काज संवारे॥
सत्यव्रत के पालन करता। दया सिन्धु करुणा उर धारे॥
निज अनुभव दे जीव चिताये। हित मति दे सब कष्ट निवारे॥
जग में जिसका नहीं सहारा। प्रभू उसके तुम ही रखवारे॥
भव जल से प्रभु पार उतारो। जीवन नैया खेवन हारे॥
"राज़" का अपने कष्ट निवारो। आन पड़ा है शरण तुम्हारे॥

——o——

Nehru is hale and hearty

Naveen Nagar Sep. 27—Mr. Nehru today had a dig at his "sympathisers" who wrote in newspapers suggesting that he should take some rest, lest he had a heart attack because of advancing age.

Mr. Nehru, who was addressing the AICC, said; "In a month-and-half from now, I shall be 70, I have

faced many challenges but it is always difficult to face the challenge of age. But I am still quite fit, in mind and body, and I do not feel weakness of any kind.

"It is a very small thing whether I remain the Prime Minister or not, but I shall remain a Citizen and a soldier of India for many days more and this role noboby can snatch from me. So till I have strength, I shall work and serve India, "Mr. Nehru added amidst prolonged applause"—"I hope and pray that when we are Strong we shall still remain humble."

Faith in present leaders gone. Vinoba ji on cause of slow progress.

Pathankot, Sep. 24—Acharya Vinoba Bhave said yesterday that the people had lost faith in the present leaders and this factor was hampering the pace of progress in the country,

Inaugurating the all India Sarvaseva Sangh Conference here, Acharya Vinoba said that truth had also vanished from the country. The words of political leaders produced no effect on the minds of the masses.

'Let us learn to love our fellowbeings, give up evil and rely on our selves,' he added.

The Conference which was attended by about 250 delegates from all over the country, was also addressed by Mr. G.P. Narayan.—P.T. I. (H.T.)

—❀❀—

learn to live upto his ideals by being simple, truthful and selfless.

He had realized early in life that one should be truthful no matter what the consequences.

He loved "the simplicity and innocence of a child's mind. He Says Simplicity and Sincerity are the two faces of the only coin that obtains currency in the kingdom of God. Simplicity is the outer of it and Sincerity is the inner of it."

He wanted that there should be no greed, no fraud, no lies in the world. "Always speak, the truth and love your fellow beings," was the advice, he gave to the little children who came to him for a blessing.

—❀❀—

शब्द विश्व प्रेमी जी

समय मिला है गुरू कृपा से, जीवन अपना बनाने को।
खुश रहते हैं इसी करम में, शुभ संदेश सुनाने को॥
काम हुआ निष्काम हमारा, सतगुरु सिर पर रहते हैं।
रोना, धोना, झींकना, कैसा, समय नहीं पछताने को॥
दुबिधा, दुचिताई, सब भागीं, भ्रम, तिम्र का नाश हुआ।
कैसे इनका गुज़ार हो दिल में, सतगुरु मिले चिताने को॥
धन्य धन्य गुरुदेव दयालू, किस मुँह से महिमा गाऊँ।
अपनी मौज से काम दिया है, प्रेमी जन उकसाने को॥
राधास्वामी सतगुरु प्यारे, मेरी जान प्रान हो तुम।
अपनी दया से नाता जोड़ा, मेरा प्रेम बढ़ाने को॥

शब्द स्वामी जी महाराज

राधास्वामी दया प्रेम घट आया। बन्धन छूटे भर्म गँवाया॥
शीतल शब्द जोति लख पाई। गगन मँडल में सुरत समाई॥
उमँगा हिरदा सुधि बिसराई। तन मन धन सब भेंट चढ़ाई॥
अब रक्षा मेरी तुम्हरे हाथा। चरन तुम्हार मारे रहे माथा॥
सुमिरन नाम करूँ निस बासर। शब्द योग का पाया अवसर॥
देखत रहूँ रूप गुरु प्यारा। काम बाम को धर धर धर मारा॥
आरत करूँ प्रेम रँग पूरी। पास रहूं गुरु के तज दूरी॥
प्रेम उमँग धारा घट बढ़ती। सुरत निरत नित ऊँचे चढ़ती॥
भूल भरम धोखा सब भागा। राधास्वामी चरन बढ़ा अनुरागा॥

—❀❀—

Mahatma Gandhi's teachings.

Gandhi ji taught us how to live a selfless life. His pure mind is a Shining example for us to follow. Let us